प्रकाशकीय

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन जी द्वारा अनुदित धम्मपद का यह अनुवाद पुन छपा देखने की बलवती इच्छा बाल्यकाल से थी। आज अनेक वर्षों के बाद अपनी इच्छा की पूर्ति हुई देख अतीव प्रसन्नता हुई।

इस संस्करण को सुन्दर व आकर्षक बनाने के लिये भरसक प्रयत्न किया पर कहाँ तक सफलता हुई यह तो विज्ञजन ही बतलायेंगे।

३०—१—५८   भिक्षु प्रज्ञानन्द

रिसालदार पार्क   बुद्धविहार, लखनऊ

प्रस्तावना

(प्रथम संस्करण)

तिपिटक (=त्रिपिटक) अधिकांशत भगवान् बुद्धके उपदेशोंका संग्रह है। त्रिपिटकका अर्थ है, तीन पिटारी। यह तीन पिटक हैं— **सुत्त** (=सूत्र), **विनय** और **अभिधम्म** (=अभिधर्म)।

१ सुत्तपिटक निम्नलिखित पाँच निकायों में विभक्त है—

१.	दीघ-निकाय	३४ सुत्त (=सूक्त या सूत्र)
२	मज्झिम-निकाय	१५२ सुत्त
३	सयुत्त-निकाय	५६ सयुक्त
४	अगुत्तर-निकाय	११ निपात
५	खुद्दक-निकाय	१५ ग्रथ

खुद्दक-निकायके १५ ग्रथ यह हैं—

(१) खुद्दकपाठ	(९) थेरी-गाथा
(२) **धम्मपद**	(१०) जातक (५५० कथायें)
(३) उदान	(११) निद्देस (चुल्ल-, महा-)
(४) इतिवुत्तक	(१२) पटिसम्भिदामग्ग
(५) सुत्तनिपात	(१३) अपदान
(६) विमान-वत्थु	(१४) बुद्धवस

(७) पत वत्थु　　　(१५) चरियापिटक

(८) थर-गाथा

२ विनयपिटक निम्न भागोंमें विभक्त है—

१—सुत्तविभंग—

(१) भिक्खु-विभंग } या { पाराजिक
(२) भिक्खुनी-विभंग } या { पाचित्तिय

२—खन्धक—

(१) महावग्ग

(२) चुल्लवग्ग

३—परिवार

३. अभिधम्मपिटक में निम्नलिखित सात ग्रंथ हैं—

१ धम्मसंगनी　　५ कथावत्थु

२ विभंग　　६ यमक

३ धातुकथा　　७ पट्ठान

४ पुग्गलपञ्ञत्ति

धम्मपद (=धमपद) त्रिपिटकके खुद्दकनिकाय विभागके पंद्रह ग्रंथोंमेंसे एक है। इसमें भगवान् बुद्धके मुखसे समय समय पर निकली ४२३ उपदेश-गाथाओंका संग्रह है। चीनी तिब्बती आदि भाषाओं के पुराने अनुवादोंके अतिरिक्त वर्तमान कालकी दुनियाकी सभी सभ्य भाषाओंमें इसके अनुवाद मिलते हैं, अंग्रेजीमें तो प्रायः एक दर्जन हैं। भारतकी अन्य भाषाओंकी तरह हमारी हिन्दी भी इसमें किसीसे पीछे नहीं है। जहाँ तक मुझे मालूम है हिन्दीमें धम्मपद के अभी तक पाँच अनुवाद हो चुके हैं जिनके लेखक हैं—

१ श्री सूर्यकुमारवर्मा　　हिन्दी (१९ ४)

२ भदन्त चन्द्रमणि महास्थविर हिन्दी और पाली दोनों (१९ ६)

३. स्वामी सत्यदेव परिव्राजक हिन्दी (बुद्धगीता)

४. श्री विष्णुनारायण हिन्दी (सं० १६८५)

५. पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय पाली-हिन्दी (१६३२ ई०)

पाँच अनुवादोंके होते छठेकी क्या आवश्यकता ?—इसका उत्तर आप पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी और महाबोधिसभा के मंत्री ब्रह्मचारी देवप्रियसे पूछिये। मैंने बहुत ननु-नच किया, किन्तु उन्होंने एक नहीं सुनी। ६ फर्वरीसे ८ मार्च तक मैं सुल्तानगंज (भागलपुर) में "गंगा"के पुरातत्त्वांकके सम्पादनके लिये श्री धूपनाथ सिंहका अतिथि था। सम्पादनका काम ही कम न था, उसपरसे वहाँ रहते दो लेख भी लिखने पड़े। उसी समय इस अनुवाद में भी हाथ लगा दिया। जो अंश बाकी रह गया था, उसे किताब को प्रेसमें देनेके बाद समाप्त किया। इस तरह "बुद्धचर्या" की भाँति "धम्मपद" में भी जल्दीसे काम लिया गया है। इससे पुस्तकमें प्रूफ़ ही-की गल्तियाँ नहीं रह गईं, बल्कि जल्दीमें किये अनुवादकी पुनरावृत्ति न करनेसे अनुवादकी भाषाको और सरल नहीं बनाया जा सका, इन त्रुटियोंका मैं स्वयं दोषी हूँ।

ग्रंथमें पहिले बारीक टाइप में बाईं ओर उस स्थानका नाम दिया है, जहाँ पर उक्त गाथा बुद्धके मुखसे निकली, दाहिनी ओर उस व्यक्ति का नाम है, जिसके प्रति या विषयमें उक्त गाथा कही गई। **धम्मपद की** अट्ठकथा (=टीका) में हर एक गाथाका इतिहास भी दिया हुआ है, संक्षिप्त करके उसे देनेका विचार तो उठा, लेकिन समयाभाव और ग्रंथविस्तारके भयसे वैसा नहीं किया जा सका।

सुत्तपिटकके प्रायः १०० सूत्र, और विनयके कुछ अंशको मैंने अपनी बुद्धचर्यामें अनुवादित किया है। भारतीय भाषाओंमें पाली ग्रंथोंका सबसे अधिक अनुवाद बंगलामें हुआ है। जातकोंका बंगला अनुवाद कई जिल्दोंमें है। श्रीयुत् चारुचन्द्र बसुने **धम्मपद का** पालीके साथ संस्कृत और बंगलामें अनुवाद किया है (इस ग्रंथसे

मुझे अपने काममें बड़ी सहायता मिली है, और इसके लिए मैं चारु बाबूका आभारी हूँ)। बँगलाके बाद दूसरा नम्बर मराठी का है जिसमें आचार्य धर्मानन्द कौशाम्बीके ग्रंथोंके अतिरिक्त सारे दीघनिकाय का भी अनुवाद मिलता है। इस क्षेत्रमें हिन्दीका तीसरा नम्बर होना लज्जाकी बात है। मैंने अगले तीन चतुर्मासोंमें मज्झिमनिकाय महावग्ग और चुल्लवग्ग—इन तीन ग्रंथोंको हिन्दी में अनुवाद करनेका निश्चय किया है। यदि विघ्नबाधा न हुई, तो आशा है इस वर्षके अन्तमें पाठक मज्झिम-निकाय को हिन्दी रूप में देख लेंगे।

गुरुवर्य भदन्त चन्द्रमणि महास्थविरने ही सब प्रथम धम्मपदका मूलपाली सहित हिन्दी अनुवाद किया था। उन्होंने अनुवादकी एक प्रति भेज दी थी और सदाकी भाँति इस काममें भी उनसे बहुत प्रोत्साहन मिला तदर्थ पूज्य महास्थविरका मैं कृतज्ञ हूँ।

प्रयाग
७- १९३३

राहुल सांकृत्यायन

द्वितीय संस्करण

१ वर्ष पूर्व यह पुस्तक छपी थी कुछ ही वर्षोंबाद यह संस्करण समाप्त हो गया अब नया संस्करण निकल रहा है। इसका संशोधन मैंने कर दिया है। भिक्षु श्री प्रज्ञानन्द का इसका श्रेय है जो कि सर्वथा नवीन यह ग्रंथ इस रूपसे प्रकाशित हो रहा है।

लखनऊ
१-१-५६

राहुल सांकृत्यायन

वर्ग-सूची

	पृष्ठ
१—यमकवग्गो	१
२—अप्पमादवग्गो	११
३—चित्तवग्गो	१६
४—पुप्फवग्गो	२१
५—बालवग्गो	२८
६—पंडितवग्गो	३५
७—अर्हन्तवग्गो	४२
८—सहस्सवग्गो	४७
९—पापवग्गो	५४
१०—दंडवग्गो	६०
११—जरावग्गो	६७
१२—अत्तवग्गो	७२
१३—लोकवग्गो	७७
१४—बुद्धवग्गो	८२
१५—सुखवग्गो	९०
१६—पियवग्गो	९६
१७—कोधवग्गो	१०१
१८—मलवग्गो	१०७
१९—धम्मट्ठवग्गो	११५
२०—मग्गवग्गो	१२२
२१—पकिण्णकवग्गो	१२९
२२—निरयवग्गो	१३५
२३—नागवग्गो	१४१
२४—तण्हावग्गो	१४८
२५—भिक्खुवग्गो	१६०
२६—ब्राह्मणवग्गो	१८०
गाथा-सूची	२८६
शब्द-सूची	३६७

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

धम्मपदं

१—यमकवग्गो

स्थान—श्रावस्ती व्यक्ति—चक्खुपाल (थेर)

१—मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया ।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा ।
ततो 'नं दुक्खमन्वेति चक्कं 'व वहतो पद ॥१॥

(मनःपूर्वङ्गमा धर्मा मनःश्रेष्ठा मनोमया
मनसा चेत्प्रदुष्टेन भाषते वा करोति वा ।
तत एनं दुःखमन्वेति चक्रमिव वहतःपदम् ॥१॥)

अनुवाद—सभी धर्मों (=कायिक, वाचिक, मानसिक कर्मों, या सुख दुःख आदि अनुभवों) का मन अग्रगामी है, मन (उनका) प्रधान है, (कर्म) मनोमय हैं। जब (कोई) सदोष मनसे (बात) बोलता है, या (काम) करता है, तो

वाहन (बैल आदि) के पैरों को जैसे (रथ का) पहिया अनुगमन करता है (वैसे ही) उसका दुःख अनुगमन करता है।

श्रावस्ती मट्ठकुण्डली

२—मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति छाया'व अनपायिनी ॥२॥

(मनःपूर्वङ्गमा धर्मा मनःश्रेष्ठा मनोमयाः।
मनसा चेत् प्रसन्नेन भाषते वा करोति वा।
तत एनं सुखमन्वेति छायेवानपायिनी ॥२॥)

अनुवाद—सभी धर्मों का मन अग्रगामी है मन प्रधान है, (धर्म) मनोमय हैं। यदि (कोई) स्वच्छ मन से बोलता या करता है तो (सुख) न (साथ) छोड़नेवाली छाया की तरह सुख उसका अनुगमन करता है।

श्रावस्ती (जेतवन) थुल्लतिस्स (थेर)

३—अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।
ये च तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति ॥३॥

(अक्रोशीत् मां अवधीत् मां अजैषीत् मां अहार्षीत् मे।
ये च तत् उपनह्यन्ति वैरं तेषां न शाम्यति ॥३॥)

अनुवाद—'मुझे गाली दिया' 'मुझे मारा' 'मुझे हरा दिया' 'मुझे लूट लिया' (ऐसा) जो (मन में) बाँधते हैं उनका वैर कभी शान्त नहीं होता।

४–अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे ।
ये तं न उपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति ॥४॥

(अक्रोशीत् मां अवधीत् मा अजैषीत् अहार्षीत् मे ।
ये तत् नोपनह्यन्ति वैरं तेषूपशाम्यति ॥४॥)

अनुवाद—'मुझे गाली दिया'० (ऐसा) (मनमें) नहीं रखते उनका वैर शान्त हो जाता है ।

श्रावस्ती (जेतवन) काली (यक्खिनी)

५–न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं ।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥५॥

(न हि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन ।
अवैरेण च शाम्यन्ति, एष धर्मः सनातनः ॥५॥)

अनुवाद—यहाँ (संसार में) वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता, अवैर से ही शान्त होता है, यही सनातन धर्म (= नियम) है ।

श्रावस्ती (जेतवन) कोसम्बक भिक्खू

६–परे च न विजानन्ति मयमेत्थ यमामसे ।
ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधगा ॥६॥

(परे च न विजानन्ति वयमत्र यंस्यामः ।
ये च तत्र विजानन्ति ततः शाम्यन्ति मेधगाः ॥६॥)

अनुवाद—अन्य (अज्ञ लोग) नहीं जानते, कि हम इस (संसार) से जानेवाले हैं । जो इसे जानते हैं, फिर (उनके) मनके (सभी विकार) शान्त हो जाते हैं ।

सावत्थी　　　　　　　　　　चुल्लकाल महाकाल

७—सुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु असंवुतं ।
भोजनम्हि अमत्तञ्ञुं कुसीतं हीनवीरियं ।
तं वे पसहति मारो वातो रुक्खं 'व दुब्बलं ॥७॥

(शुभमनुपश्यन्तं विहरन्तं इन्द्रियेषु असंवृतम् ।
भोजनेऽमात्रज्ञं कुसीदं हीनवीर्यम् ।
तं वै प्रसहति मारो वातो वृक्षमिव दुर्बलम् ॥७॥)

अनुवाद—(जो) शुभ ही शुभ देखते विहरता है इन्द्रियोंमें संयम न करनेवाला होता है भोजन में मात्रा को नहीं जानता आलसी और उद्योगहीन होता है, उसे मार (=मनकी दुष्प्रवृत्तियाँ) (वैसे ही) पीड़ित करता है जैसे दुर्बल वृक्ष को हवा।

८—असुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु सुसंवुतं ।
भोजनम्हि च मत्तञ्ञुं सद्धं आरद्धवीरियं ।
तं वे नप्पसहति मारो वातो सेलं 'व पब्बतं ॥८॥

(अशुभमनुपश्यन्तं विहरन्तं इन्द्रियेषु सुसंवृतम् ।
भोजने च मात्रज्ञं श्रद्धं आरब्धवीर्यम् ।
तं वै न प्रसहते मारो वातः शैलमिव पर्वतम् ॥८॥)

अनुवाद—जो अशुभ देखते विहरता इन्द्रियोंको संयम करता भोजनमें मात्रा का जानता श्रद्धावान् तथा उद्योगी है उसे शिलामय पर्वत को जैसे वायु नहीं डिगा सकता (वैसेही) मार नहीं (डिगा सकता)।

श्रावस्ती (जेतवन) देवदत्त

९—अनिक्कसावो कासावं यो वत्थं परिदहेस्सति ।
अपेतो दमसच्चेन न स कासावमरहति ॥९॥

(अनिष्कषायः काषायं यो वस्त्रं परिधास्यति ।
अपेतो दमसत्याभ्यां न स काषायमर्हति ॥९॥)

अनुवाद—जो (पुरुष) (राग, द्वेष आदि) कषायों (=मलों) को विना छोड़े काषाय वस्त्रों को धारण करेगा, वह संयम-सत्यसे परे हटा हुआ (है), और (वह) काषाय (वस्त्र) का अधिकारी नहीं है ।

१०—यो च वन्तकसावस्स सीलेसु सुसमाहितो ।
उपेतो दमसच्चेन स वे कासावमरहति ॥१०॥

(यश्च वान्तकषायः स्यात् शीलेषु सुसमाहितः ।
उपेतो दम-सत्याभ्यां स वै काषायमर्हति ॥१०॥)

अनुवाद—जिसने कषायोंको वमन कर दिया है, जो आचार (=शील) से सुसम्पन्न, तथा संयम-सत्य से संयुक्त है, वही काषाय (वस्त्र) का अधिकारी है ।

राजगृह (वेणुवन) संजय

११—असारे सारमतिनो सारे चासारदस्सिनो ।
ते सारं नाधिगच्छन्ति मिच्छासङ्कप्पगोचरा ॥११॥

(असारे सारमतयः सारे चासारदर्शिनः ।
ते सारं नाधिगच्छन्ति मिथ्यासङ्कल्पगोचराः ॥११॥)

अनुवाद—जो असारको सार समझते हैं, और सारको असार, वह झूठे संकल्पोंमें संलग्न (पुरुष) सारको नहीं प्राप्त करते।

१२—सारञ्च सारतो ञत्वा असारञ्च असारतो।
ते सारं अधिगच्छन्ति सम्मासङ्कप्पगोचरा ॥१२॥

(सारं च सारतो ज्ञात्वा असारं च असारतः।
ते सारं अधिगच्छन्ति सम्यक्-संकल्प-गोचराः ॥१२॥)

अनुवाद—जो सारको सार जानते हैं असार को असार, वह सच्चे संकल्पमें संलग्न (पुरुष) सारको प्राप्त करते हैं।

श्रावस्ती (जेतवन) नन्द (थेर)

१३—यथागारं दुच्छन्नं वुट्ठी समतिविज्झति
एवं अभावितं चित्तं रागो समतिविज्झति ॥१३॥

(यथागारं दुश्छन्नं वृष्टिः समतिविध्यति।
एवं अभावितं चित्तं रागः समतिविध्यति ॥१३॥)

अनुवाद—जैसे ठीकसे न छाये घर में वृष्टि घुस जाती है। वैसे ही अभावित (=न संयम किया) चित्तमें राग घुस जाता है।

१४—यथागारं सुच्छन्नं वुट्ठी न समतिविज्झति।
एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविज्झति ॥१४॥

(यथागारं सुच्छन्नं वृष्टिर्न समतिविध्यति।
एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविध्यति ॥१४॥)

अनुवाद—जैसे ठीकसे छाये घरमें वृष्टि नहीं घुसती वैसे ही सुभावित चित्त में राग नहीं घुसता।

राजगृह (वेणुवन) चुन्द (सूकारिक)

१५—इध सोचति पेच्च सोचति
पापकारी उभयत्थ सोचति।
सो सोचति सो विहञ्ञति
दिस्वा कम्मकिलिट्ठमत्तनो ॥१५॥

(इह शोचति प्रेत्य शोचति पापकारी उभयत्र शोचति
स शोचति स विहन्यते दृष्ट्वा कर्म क्लिष्टमात्मनः ॥१५॥)

अनुवाद—यहाँ (इस लोक में) शोक करता है, मरने के बाद शोक करता है, पाप करने वाला दोनो (लोकों) मे शोक करता है। वह अपने मलिन कर्मों को देखकर शोक करता है, पीड़ित होता है।

श्रावस्ती (जेतवन) धर्म्मिक (उपासक)

१६—इध मोदति पेच्च मोदति
कतपुञ्ञो उभयत्थ मोदति।
सो मोदति सो पमोदति
दिस्वा कम्मविसुद्धिमत्तनो ॥१६॥

(इह मोदते प्रेत्य मोदते कृतपुण्य उभयत्र मोदते।
स मोदते स प्रमोदते दृष्ट्वा कर्मविशुद्धिमात्मनः ॥१६॥)

अनुवाद—यहाँ प्रमुदित होता है, मरने के बाद प्रमुदित होता है, जिसने पुण्य किया है, वह दोनों ही जगह प्रमुदित होता है। वह अपने कर्मों की शुद्धता को देखकर मुदित होता है, प्रमुदित होता है।

श्रावस्ती (जेतवन) देवदत्त

१७—इध तप्पति पेच्च तप्पति,
पापकारी उभयत्थ तप्पति ।
पापं मे कतन्ति तप्पति,
भीय्यो तप्पति दुग्गतिङ्गतो ॥ १७ ॥

(इह तप्यति प्रेत्य तप्यति पापकारी उभयत्र तप्यति ।
पापं मे कृतमिति तप्यति भूयस्तप्यति दुर्गतिंगतः ॥१७॥)

अनुवाद—यहाँ संतप्त होता है, मरकर संतप्त होता है, पापकारी दोनों जगह संतप्त होता है। "मैंने पाप किया है"—यह (सोच) संतप्त होता है। दुर्गति को प्राप्त हो और भी संतप्त होता है।

श्रावस्ती (जेतवन) सुमना देवी

१८—इध नन्दति पेच्च नन्दति,
कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति,
पुञ्ञं मे कतन्ति नन्दति,
भीय्यो नन्दति सुग्गतिंगतो ॥१८॥

(इह नन्दति प्रेत्य नन्दति कृतपुण्य उभयत्र नन्दति ।
पुण्यं मे कृतमिति नन्दति भूयो नन्दति सुगतिंगतः ॥१८॥)

अनुवाद—यहाँ आनन्दित होता है, मरकर आनन्दित होता है। जिसने पुण्य किया है वह दोनों जगह आनन्दित होता है। "मैंने पुण्य किया है"—यह (सोच) आनन्दित होता है, सुगति को प्राप्त हो और भी आनन्दित होता है।

श्रावस्ती (जेतवन) दो मित्र भिक्षु

१९—बहुंपि चे सहितं भासमानो,
न तक्करो होति नरो पमत्तो।
गोपो 'व गावो गणय परेसं,
न भागवा सामञ्ञस्स होति ॥१९॥

(बह्वीमपि संहितां भाषमाणः,
न तत्करो भवति नरः प्रमत्तः ।
गोप इव गा गणयन् परेषां,
न भाग्यवान् श्रामण्यस्य भवति ॥१९॥

अनुवाद—चाहे कितनी ही संहिताओं (= वेदों) का उच्चारण करे, किन्तु प्रमादी बन (जो) नर उसके (अनुसार) (आचरण) करनेवाला नहीं होता, (वह) दूसरे की गायों को गिननेवाले ग्वालेकी भाँति श्रमणपन (= सन्यासीपन) का भागी नहीं होता।

२०—अप्पम्पि चे सहितं भासमानो,
धम्मस्स होति अनुधम्मचारी।
रागञ्च दोसञ्च पहाय मोहं,
सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो।
अनुपादियानो इध वा हुरं वा,
स भागवा सामञ्ञस्स होति ॥२०॥

(अल्पामपि संहितां भाषमाणो,
धर्मस्य भवत्यनुधर्मचारी।
रागं च द्वेषं च प्रहाय मोहं
सम्यक्प्रजानन् सुविमुक्तचित्तः
अनुपाददान इह वाऽमुत्र वा
स भागवान् श्रामण्यस्य भवति ॥२०॥)

अनुवाद—चाहे अल्पमात्र ही संहिता का भाषण करे, किन्तु यदि वह धर्म के अनुसार आचरण करने वाला हो राग द्वेष और मोह को त्यागकर अच्छी प्रकार सचेत और अच्छी प्रकार सुमुक्तचित्त हो यहाँ और वहाँ (दोनों जगह) बटोरनेवाला न हो, (तो) वह श्रमणपन का भागी होता है।

१—यमकवग्ग समाप्त

२—अप्पमादवग्गो

कौशाम्बी (घोषिताराम)　　　　　　　　सामावती (रानी)

२१—अप्पमादो अमत-पदं पमादो मच्चुनो पदं ।
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता ॥१॥

(अप्रमादोऽमृतपदं प्रमादो मृत्यो. पदम् ।
अप्रमत्ता न म्रियन्ते ये प्रमत्ता यथा मृता ॥१॥)

२२—एत विसेसतो ञत्वा अप्पमादम्हि पण्डिता ।
अप्पमादे पमोदन्ति अरियानं गोचरे रता ॥२॥

(एवं विशेषतो ज्ञात्वाऽप्रमादे पण्डिता ।
अप्रमादे प्रमोदंत आर्याणां गोचरे रता ॥२॥)

२३—ते झायिनो साततिका निच्चं दळ्ह-परक्कमा ।
फुसन्ति धीरा निब्बाणं योगक्खेमं अनुत्तरं ॥३॥

(ते ध्यायिन साततिका नित्यं दृढपराक्रमा ।
स्पृशन्ति धीरा निर्वाणं योगक्षेमं अनुत्तरम् ॥३॥)

अनुवाद—प्रमाद (=आलस) न करना अमृत पद है और प्रमाद (करना) मृत्यु-पद। अप्रमादी (कभी) नहीं मरते, जैसे कि प्रमादी मरते हैं। पंडित लोग अप्रमाद के विषय में इस प्रकार विशेषता जान, आर्यों के आचरण में रत हो, अप्रमाद में प्रमुदित होते हैं। (जो) वह निरन्तर ध्यानरत, नित्य दृढ़ पराक्रमी हैं, वह धीर अनुपम योग-क्षेम (आनन्द मंगल) वाले निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

राजगृह (वेणुवन) कुम्भघोसक

२४—उट्ठानवतो सतिमतो
सुचिकम्मस्स निसम्मकारिणो।
सञ्ञतस्स च धम्मजीविनो
अप्पमत्तस्स यसोऽभिवड्ढति ॥४॥

(उत्थानवतः स्मृतिमतः शुचिकर्मणो निशम्य-कारिणः।
संयतस्य च धर्मजीविनोऽप्रमत्तस्य यशोऽभिवर्द्धते ॥४॥)

अनुवाद—(जो) उद्योगी, सचेत, शुचि कर्मवाला तथा सोचकर काम करने वाला है और संयत, धर्मानुसार जीविका वाला एवं अप्रमादी है, (उसका) यश बढ़ता है।

राजगृह (वेणुवन) चुल्लपन्थक (थेर)

२५—उट्ठानेन ऽप्पमादेन सञ्ञमेन दमेन च।
दीपं कयिराथ मेधावी यं ओघो नाभिकीरति ॥५॥

(उत्थानेनाऽप्रमादेन संयमेन दमेन च।
द्वीपं ओघा कुर्यात् मेधावी यं नाभिकिरति ॥५॥)

अनुवाद—मेधावी (पुरुष) उद्योग, अप्रमाद, संयम और दम द्वारा (अपने लिए ऐसा) द्वीप बनावें, जिसे बाढ़ नहीं डुवा सके।

जेतवन बालनक्खतघुट्ठ (होली)

२६—पमादमनुयुञ्जन्ति बाला दुम्मेधिनो जना ।
अप्पमादञ्च मेधावी धनं सेट्ठं 'व रक्खति ॥६॥

(प्रमादमनुयुंजन्ति बाला दुर्मेधसो जन ।
अप्रमादं च मेधावी धनं श्रेष्ठमिव रक्षति ॥६॥)

अनुवाद—मूर्ख दुर्मेध जन प्रमादमें लगते हैं; मेधावी श्रेष्ठ धन की भाँति अप्रमाद की रक्षा करता है।

२७—मा पमादमनुयुञ्जेथ मा कामरतिसन्थवं ।
अप्पमत्तो हि झायन्तो पप्पोति विपुलं सुखं ॥७॥

(मा प्रमादमनुयुंजीत मा कामरतिसंस्तवम् ।
अप्रमत्तो हि ध्यायन् प्राप्नोति विपुलं सुखम् ॥ ७ ॥)

अनुवाद—मत प्रमादमें फसो, मत कामो में रत होओ, मत काम रति में लिप्त हो । प्रमादरहित (पुरुष) ध्यान करते महान् सुखको प्राप्त होता है।

जेतवन महाकस्सप (थेर)

२८—पमाद अप्पमादेन यदा नुदति पण्डितो ।
पञ्ञापासादमारुय्ह असोको सोकिनिं पजं ।
पब्बतट्ठो 'व भूम्मट्ठे धीरो बाले अवेक्खति ॥८॥

(प्रमादमप्रमादेन यदा नुदति पण्डितः ।
प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोकः शोकिनीं प्रजाम् ।
पर्वतस्थ इव भूमिस्थान् धीरो बालान् अवेक्षते ॥८॥)

अनुवाद—पंडित जब अप्रमाद से प्रमाद को हटाता है तो निःशोक हो शोकाकुल प्रजा को प्रज्ञारूपी प्रासाद पर चढ़कर—जैसे पर्वत पर खड़ा (पुरुष) भूमिपर खड़े व्यक्तियों को देखता है (वैसे ही) धीर (पुरुष) अज्ञानियों को (देखता है)।

जेतवन दो मित्र भिक्षु

२९—अप्पमत्तो पमत्तेसु सुत्तेसु बहुजागरो ।
अबलस्सं 'व सीघस्सो हित्वा याति सुमेधसो ॥९॥

(अप्रमत्तः प्रमत्तेषु सुप्तेषु बहुजागरः ।
अबलाश्वमिव शीघ्राश्वो हित्वा याति सुमेधाः ॥९॥)

अनुवाद—प्रमादियों के बीचमें अप्रमादी सोतों के बीचमें बहुत जागनेवाला अच्छी बुद्धिवाला (पुरुष)—जैसे निर्बल घोड़े को (पीछे) छोड़ शीघ्रगामी घोड़ा (आगे) चला जाता है—(वैसे ही चला जाता है)।

वैशाली (कूटागार) महाली

३०—अप्पमादेन मघवा देवानं सेट्ठतं गतो ।
अप्पमादं पसंसन्ति पमादो गरहितो सदा ॥१०॥

(अप्रमादेन मघवा देवानां श्रेष्ठतां गतः ।
अप्रमादं प्रशंसन्ति प्रमादो गर्हितः सदा ॥१०॥)

प्रज्ञाप्रासादमारुह्याशोच्यः शोचतो जनान् ।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति॥
—योगभाष्य १।४७

अनुवाद—अप्रमाद (=आलस्य रहित होने) के कारण इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ बना। अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं, और प्रमाद की सदा निन्दा होती है।

जेतवन कोई भिक्षु

३१—अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा।
सञ्ञोजनं अणुं थूलं डहं अग्गीव गच्छति ॥११॥

(अप्रमादरतो भिक्षु प्रमादे भयदर्शी वा।
संयोजनं अणुं स्थूलं दहन् अग्निरिव गच्छति ॥११॥)

अनुवाद—(जो) भिक्षु अप्रमाद में रत है, या प्रमाद से भय खानेवाला (है), (वह), आग की भाँति छोटे मोटे बंधनों को जलाते हुए जाता है।

जेतवन (निगम-वासी) तिस्स (थेर)

३२—अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा।
अभब्बो परिहाणाय निब्बाणस्सेव सन्तिके ॥१२॥

(अप्रमादरतो भिक्षु प्रमादे भयदर्शी वा।
अभव्यः परिहाणाय निर्वाणस्यैव अंतिके ॥१२॥)

अनुवाद—(जो) भिक्षु अप्रमाद में रत या प्रमाद से भय खानेवाला है, उसका पतन होना सम्भव नहीं, (वह) निर्वाण के समीप है।

२—अप्रमादवर्ग समाप्त

३—चित्तवग्गो

चालिय पर्वत   मेघिय (थेर)

३३—फन्दनं चपलं चित्तं दुरक्खं दुन्निवारयं ।
उजुं करोति मेधावी उसुकारो'व तेजनं ॥१॥

(स्पंदनं चपलं चित्तं दुर्रक्ष्यं दुर्निवार्यम् ।
ऋजुं करोति मेधावी इषुकार इव तेजनम् ॥१॥)

अनुवाद—(इस) चंचल चपल दुर्-रक्ष्य दुर्-निवार्य चित्तको मेधावी (पुरुष उसी प्रकार) सीधा करता है जैसे बाण बनाने-वाला बाण को ।

३४—वारिजो'व थले खित्तो ओकमोकत उब्भतो ।
परिफन्दतिदं चित्तं मारधेय्यं पहातवे ॥२॥

(वारिज इव स्थले क्षिप्त उदकौकस उद्धृतम् ।
परिस्पंदत इदं चित्तं मारधेयं प्रहातुम् ॥२॥)

अनुवाद—जैसे जलाशय से निकालकर स्थल पर फेंक दी गई मछली (=वारिज) तड़फड़ाती है, (वैसे ही) मार (राग

द्वेष; मोह) के फन्देसे निकलने के लिए यह चित्त (तड़फड़ाता है)।

श्रावस्ती कोई

३५—दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थ कामनिपातिनो।
चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं ॥३॥
(दुर्निग्रहस्य लघुनो यत्र-काम-निपातिन।
चित्तस्य दमनं साधु, चित्तं दान्तं सुखावहम् ॥३॥)

अनुवाद—(जो) कठिनाईसे निग्रह योग्य; शीघ्रगामी, जहाँ चाहता है वहाँ चला जानेवाला है; [ऐसे] चित्तका दमन करना उत्तम है, दमन किया गया चित्त सुखप्रद होता है।

श्रावस्ती कोई उत्कण्ठित भिक्षु

३६—सुदुद्दसं सुनिपुणं यत्थ कामनिपातिनं।
चित्तं रक्खेय्य मेधावी, चित्तं गुत्तं सुखावहं ॥४॥
(सुदुर्दर्शं सुनिपुणं यत्र-कामनिपाति।
चित्तं रक्षेत् मेधावी, चित्तं गुप्तं सुखावहम् ॥४॥)

अनुवाद—कठिनाई से जानने योग्य, अत्यन्त चालाक, जहाँ चाहे वहाँ ले जानेवाले चित्तकी, बुद्धिमान् रक्षा करे; सुरक्षित चित्त सुखप्रद होता है।

श्रावस्ती संघरक्खित (थेर)

३७—दूरङ्गमं एकचरं असरीरं गुहासयं।
ये चित्तं सञ्ञमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारबन्धना ॥५॥

(दूरंगमं एकचरं अशरीरं गुहाशयम्।
ये चित्तं संयंस्यन्ति मुच्यन्ते मारबन्धनात् ॥५॥)

अनुवाद—दूरगामी अकेला विचरनेवाले निराकार गुहाशायी (इस) चित्तको, जो संयम करेंगे, वह मारके बन्धनसे मुक्त होंगे।

श्रावस्ती चित्तहत्थ (थेर)

३८—अनवट्ठितचित्तस्स सद्धम्मं अविजानतो।
परिप्लवपसादस्स पञ्ञा न परिपूरति ॥६॥

(अनवस्थितचित्तस्य सद्धर्मं अविजानतः।
परिप्लवप्रसादस्य प्रज्ञा न परिपूर्यते ॥६॥)

अनुवाद—जिसका चित्त अवस्थित नहीं, जो सच्चे धर्मको नहीं जानता, जिसका [चित्त] प्रसन्नताहीन है, उसे प्रज्ञा (=परम ज्ञान) नहीं मिल सकता।

३९—अनवस्सुतचित्तस्स अनन्वाहतचेतसो।
पुञ्ञपापपहीनस्स नत्थि जागरतो भयं ॥७॥

(अनवस्रुतचित्तस्य अनन्वाहतचेतसः।
पुण्यपापप्रहीणस्य नास्ति जाग्रतो भयम् ॥७॥)

अनुवाद—जिसका चित्त मलरहित है, जिसका मन अकम्प्य है, जो पाप-पुण्य-विहीन है, उस सजग रहनेवाले (पुरुष) के लिये भय नहीं।

श्रावस्ती   पाँच सौ विपश्यक भिक्षु

४०—कुम्भूपम कायमिम विदित्वा
नगरूपम चित्तमिदं ठपेत्वा ।
योधेथ मार पञ्ञायुधेन
जित च रक्खे अनिवेसनो सिया ॥८॥

(कुम्भोपमं कायमिम विदित्वा
नगरोपम चित्तमिद स्थापयित्वा ।
युध्येत् मार प्रज्ञायुधेन जित
च रक्षेत् अनिवेशन स्यात् ॥८॥)

अनुवाद—इस शरीर को घडे के समान (भगुर) जान, इस चित्त को गढ (=नगर) के समान कायम कर, प्रज्ञारूपी हथियार से मार से युद्ध करे। जीतने के बाद (अपनी) रक्षा करे, (तथा) आसक्ति रहित होवे।

श्रावस्ती   पूतिगत्त तिस्स (थेर)

४१—अचिर वत'य कायो पठवि अधिसेस्सति ।
छुद्धो अपेतविञ्ञाणो निरत्थ'व कलिङ्गर ॥६॥

(अचिर वताय काय पृथिवी अधिशेष्यते ।
क्षुद्रोऽपेतविज्ञानो निरर्थं इव कलिङ्गरम् ॥६॥)

अनुवाद—अहो ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही, चेतनारहित हो निरर्थक काठ की भाँति पृथिवी पर पड़ रहेगा।

कोसल देस नन्द (गोप)

४२—दिसो दिसं यन्तं कयिरा वेरी वा पन वेरिनं ।
मिच्छापणिहितं चित्तं पापियो'नं ततो करे ॥१०॥

(द्विट् द्विषं यत् कुर्यात् वैरी वा पुनः वैरिणम् ।
मिथ्याप्रणिहितं चित्तं पापीयांसं एनं ततः कुर्यात् ॥१०॥)

अनुवाद—जितनी (हानि) शत्रु शत्रुकी और वैरी वैरीकी करता है, झूठे (मार्ग पर) लगा चित्त उससे अधिक बुराई करता है।

कोसल देस सोरय्य (सेठ)

४३—न तं माता पिता कयिरा अञ्ञे वापि च ञातका ।
सम्मापणिहितं चित्तं सेय्यसो'नं ततो करे ॥११॥

(न तत् मातापितरौ कुर्यातां अन्ये वापि च ज्ञातिकाः ।
सम्यक्प्रणिहितं चित्तं श्रेयांसं एनं ततः कुर्यात् ॥११॥)

अनुवाद—जितनी (भलाई) न माता-पिता कर सकते हैं न दूसरे भाई-बन्धु, उससे (अधिक) भलाई ठीक (मार्ग पर) लगा चित्त करता है।

३—चित्तवग्ग समाप्त

४—पुप्फवग्गो

श्रावस्ती पाँच सौ भिक्षु

४४—को इमं पठविं विजेस्सति,
यमलोकञ्च इम सदेवकं ।
को धम्मपद सुदेसित,
कुसलो पुप्फमिव प्पचेस्सति ॥१॥

(क इमां पृथिवीं विजेष्यते यमलोक च इद सदेवकम् ।
को धर्मपद सुदेशित कुशल पुष्पमिव प्रचेष्यति ॥१॥)

अनुवाद—देवताओं सहित उस यमलोक और इस पृथिवी को कौन विजय करेगा, सुन्दर प्रकार से उपदिष्ट धर्म के पदों को कौन चतुर (पुरुष) पुष्प की भाँति चयन करेगा ?

४५—सेखो पठवि विजेस्सति,
यमलोकञ्च इद सदेवक
सेखो धम्मपदं सुदेसित,
कुसलो पुप्फमिव प्पचेस्सति ॥२॥

(शैक्षः पृथिवीं विजेष्यते यमलोक च इम सदेवकम् ।
शैक्षो धर्मपद सुदेशित कुशल पुष्पमिव प्रचेष्यति ॥२॥)

अनुवाद—शैक्ष्य[1] देवताओं सहित इस यमलोक और पृथिवी को विजय करेगा। चतुर माली सुन्दर प्रकार से उपदिष्ट धर्म के पदों को पुष्प की भाँति चयन करेगा।

श्रावस्ती — मरीचि (कम्मट्ठानिक थेर)

४ —फेणूपमं कायमिमं विदित्वा
मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानो।
छेत्वान मारस्स पपुप्फकानि
अदस्सनं मच्चुराजस्स गच्छे ॥३॥

(फेनोपमं कायमिमं विदित्वा
मरीचिधर्म्मं अभिसम्बुधानः।
छित्त्वा मारस्य प्रपुष्पकाणि
अदर्शनं मृत्युराजस्य गच्छेत् ॥३॥)

अनुवाद—इस काया को फेन के समान जान या (यह) मरीचिका के समान जान, मार के फूलों को तोड़कर यमराज को फिर न देखने वाले बनो।

श्रावस्ती — विड़ूडभ

४७—पुप्फानि हेव पचिनन्तं ब्यासत्तमनसं नरं।
सुत्तं गामं महोघोव मच्चु आदाय गच्छति ॥४॥

[1]निर्वाण के मार्ग पर जो इस प्रकार आरूढ़ हो गये हैं कि फिर उनका उससे पतन नहीं हो सकता, ऐसे पुरुष को शैक्ष्य कहते हैं। उनके तीन भेद हैं—स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी।

(पुष्पाणि ह्येव प्रचिन्वन्तं व्यासक्तमनसं नरम् ।
सुप्त ग्राम महोघ इव मृत्युरादाय गच्छति ॥४॥)

अनुवाद—(राग आदि के) फूलों के चुननेवाले आसक्तियुक्त मनुष्य-को मृत्यु (वैसे ही) पकड ले जाती है, जैसे सोये गाँव को बड़ी बाढ ।

श्रावस्ती पतिपूजिका

४८—पुप्फानि हेव पचिनन्तं व्यासत्तमनसं नरं ।
अतित्त येव कामेसु अन्तको कुरुते वसं ॥५॥

(पुष्पाणि ह्येव प्रचिन्वन्त व्यासक्तमनस नरम
अतृप्त एव कामेषु अन्तक कुरुते वशम् ॥५॥)

अनुवाद—(राग आदि) फूलों को चुनते आसक्तियुक्त पुरुष को. (जब कि अभी उसने) कामों में तृप्ति नहीं प्राप्त की, (तभी) यम (अपने) वश में कर लेता है ।

श्रावस्ती (कंजूस) कोसिय सेठ

४९—यथापि भमरो पुप्फ वण्णगन्धं अहेठयं ।
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे ॥६॥

(यथापि भ्रमर पुष्प वर्णगन्ध अघ्नन् ।
पलायते रसमादाय एव ग्रामे मुनिश्चरेत् ॥६॥)

अनुवाद—जिस प्रकार भ्रमर फूल के वर्ण और गध को बिना हानि पहुँचाये, रस को लेकर चल देता है, वैसे ही गाँव में मुनि विचरण करे ।

सावत्थी पाठिक (आजीवक साधु)

५०—न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं।
अत्तनो'व अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च ॥७॥

(न परेषां विलोमानि न परेषां कृताकृतम्।
आत्मन एव अवेक्षेत कृतानि अकृतानि च ॥७॥)

अनुवाद—न दूसरों के विरोधी (वचन) कहे, न दूसरों के कृत-अकृत के खोज में रहे (आदमी को चाहिये कि वह) अपने ही कृत (=किये) और अकृत (=न किये) की (खोज करे)।

सावत्थी (छत्तपाणि) उपासक

५१—यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं अगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा अफला होति अकुब्बतो ॥८॥
(यथापि रुचिरं पुष्पं वर्णवद् अगन्धकम्।
एवं सुभाषिता वाक् अफला भवति अकुर्वतः ॥८॥)

अनुवाद—जैसे रुचिर और वर्णयुक्त (किन्तु) गन्धरहित फूल है वैसे ही (कथनानुसार) आचरण न करनेवाले की सुभाषित वाणी भी निष्फल है।

५२—यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं सगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा सफला होति कुब्बतो ॥९॥
(यथापि रुचिरं पुष्पं वर्णवत् सगन्धकम्।
एवं सुभाषिता वाक् सफला भवति कुर्वतः ॥९॥)

अनुवाद—जैसे रुचिर वर्णयुक्त और गन्धसहित फूल होता है, वैसे ही (वचनके अनुसार काम) करनेवालेकी सुभाषित वाणी सफल होती है।

श्रावस्ती (पूर्वाराम) विशाखा (उपासिका)

५३—यथापि पुप्फरासिम्हा कयिरा मालागुणे बहू ।
एवं जातेन मच्चेन कत्तब्ब कुसलं बहूं ॥१०॥

(यथापि पुष्पराशेः कुर्यात् मालागुणान् बहून् ।
एव जातेन मर्त्येन कर्त्तव्य कुशल बहु ॥१०॥)

अनुवाद—जिस प्रकार पुष्पराशिसे बहुतसी मालायें बनाये, उसी प्रकार उत्पन्न हुये प्राणीको चाहिये कि वह बहुतसे भले (कर्मों को करे।

श्रावस्ती आनन्द (थेर)

५४—न पुप्फगन्धो पटिवातमेति
न चन्दनं तगरमल्लिका वा ।
सतञ्च गन्धो पटिवातमेति
सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति ॥११॥

(न पुष्पगन्ध प्रतिवातमेति
न चन्दन तगर-मल्लिके वा ।
सता च गन्ध प्रतिवातमेति
सर्वा दिश सत्पुरुष प्रवाति ॥११॥)

अनुवाद—फूलकी सुगंध हवासे उलटी ओर नहीं जाती, न चन्दन तगर या चमेली (की गंध ही वैसा करती है); किन्तु सज्जनोंकी सुगंध हवासे उलटी ओर जाती है, सत्पुरुष सभी दिशाओंमें (सुगंध) बहाते हैं।

५५—चन्दनं तगरं वापि उप्पलं अथ वस्सिकी।
एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो ॥१२॥

(चन्दनं तगरं वापि उत्पलं अथ वार्षिकी।
एतेषां गन्धजातानां शीलगन्धोऽनुत्तरः ॥१२॥)

अनुवाद—चन्दन या तगर, कमल या जूही, इन सभी (की) सुगंधोंसे सदाचारकी सुगंध उत्तम है।

राजगृह (वेळुवन) महाकस्सप

५६—अप्पमत्तो अयं गन्धो यायं तगरचन्दनी।
यो च सीलवतं गन्धो वाति देवेसु उत्तमो ॥१३॥

(अल्पमात्रोऽयं गन्धो योऽयं तगरचन्दनी।
यश्च शीलवतां गन्धो वाति देवेषु उत्तमः ॥१३॥)

अनुवाद—तगर और चन्दनकी जो यह गंध फैलती है वह अल्पमात्र है, और जो यह सदाचारियोंकी गंध है, (वह) उत्तम (गंध) देवताओंमें फैलती है।

राजगृह (वेळुवन) गोधिक (थेर)

५७—तेसं सम्पन्नसीलानं अप्पमादविहारिनं।
सम्मदञ्ञाविमुत्तानं मारो मग्गं न विन्दति ॥१४॥

(तेषां सम्पन्नशीलाना अप्रमाद-विहारिणाम्।
सम्यग-ज्ञा-विमुक्तानां मारो मार्ग न विन्दति ॥१४॥)

अनुवाद—(जो) वे सदाचारी निरालस हो विहरनेवाले, यथार्थ ज्ञान द्वारा मुक्त (हो गये हैं), (उनके) मार्गको मार नहीं पकड़ सकता।

जेवतन गरहादिन्न

५८—यथा सकारधानस्मिं उज्झितस्मिं महापथे।
पदुम तत्थ जायेथ सुचिगन्धं मनोरमं ॥१५॥

(यथा संकारधान उज्झिते महापथे।
पद्म तत्र जायेत शुचिगन्ध मनोरमम् ॥१५॥)

५९—एव संकारभतेसु अन्धभूते पुथुज्जने।
अतिरोचति पञ्जाय सम्मासम्बुद्धसावको ॥१६॥

(एव सकारभूते अन्धभूते पृथग्जने।
अतिरोचते प्रज्ञया सम्यक्-स बुद्ध-श्रावक ॥१६॥)

अनुवाद—जैसे महापथ पर फेंके कूड़ेके ढेरपर मनोरम, शुचिगन्ध, गुलाब (=पद्म) उत्पन्न होवे, इसी प्रकार कूड़े के समान अन्धे अज्ञजनों (=पृथग-जनों) में सम्यक्-संबुद्ध (=यथार्थ ज्ञानी) का अनुगामी (अपनी) प्रज्ञासे प्रकाशमान होता है।

४—पुप्पवर्ग समाप्त

५—बालवग्गो

श्रावस्ती (जेतवन) — दरिद्र सेवक

६०—दीघा जागरतो रत्ति दीघं सन्तस्स योजनं ।
दीघो बालानं संसारो सद्धम्मं अविजानतं ॥१॥

(दीर्घा जाग्रतो रात्रिः दीर्घं श्रान्तस्य योजनम् ।
दीर्घो बालानां संसारः सद्धर्मं अविजानताम् ॥१॥)

अनुवाद—जागनेको रात लम्बी होती है, थकेके लिये योजन लम्बा होता है; सच्चे धर्मको न जाननेवाले मूढ़ोंके लिये संसार (=आवागमन) लम्बा है।

राजगृह — सद्धिविहारी (=शिष्य)

६१—चरञ्चे नाधिगच्छेय्य सेय्यं सदिसमत्तनो ।
एकचरियं दळ्हं कयिरा नत्थि बाले सहायता ॥२॥

(चरन् चेत् नाधिगच्छेत् श्रेयांसं सदृशमात्मनः ।
एकचर्यां दृढं कुर्यात् नास्ति बाले सहायता ॥२॥)

अनुवाद—यदि विचरण करते अपने अनुरूप भलेमानुस को न पाये, तो दृढ़ताके साथ अकेला ही विचरे, मूढ़से मित्रता नहीं निभ सकती।

श्रावस्ती आनन्द (सेठ)

६२–पुत्ता म'त्थि धनम्म'त्थि इति बालो विहञ्ञति।
अत्ता हि अत्तनो नत्थि कुतो पुत्तो कुतो धनं ॥३॥

(पुत्रा मे सन्ति धनं मे ऽस्ति इति बालो विहन्यते।
आत्मा हि आत्मनो नास्ति कुतः पुत्रः कुतो धनम् ॥३॥)

अनुवाद—"पुत्र मेरा है", "धन मेरा है" ऐसा (करके) अज्ञ (नर) उत्पीड़ित होता है, जब आत्मा (=शरीर) ही अपना नहीं, तो कहाँसे पुत्र और धन (अपना होगा)।

जेतवन गिरहकट चोर

६३–यो बालो मञ्ञती बाल्यं पण्डितो चापि तेन सो।
बालो च पण्डितमानी, स वे बालो'ति वुच्चति ॥४॥

(यो बालो मन्यते बाल्यं पण्डितश्चापि तेन सः।
बालश्च पंडितमानी स, वै बाल इत्युच्यते ॥४॥)

अनुवाद—जो (कि वह) अज्ञ होकर (अपनी) अज्ञताको जानता है, इस (अंश) से वह पंडित (=जानकार) है। वस्तुतः अज्ञ होकर भी जो पंडित होनेका दम भरता है, वही अज्ञ (= बाल) कहा जाता है।

श्रावस्ती (जेतवन) — उदायी (थेर)

६४—यावजीवम्पि चे बालो पण्डितं पयिरुपासति ।
न सो धम्मं विजानाति दब्बी सूपरसं यथा ॥५॥

(यावज्जीवमपि चेद् बालः पंडितं पर्युपास्ते ।
न स धर्मं विजानाति दर्वी सूपरसं यथा ॥५॥)

अनुवाद—चाहे बाल (=मूढ़, अज्ञ) जीवन भर पंडितकी सेवामें रहे (तो भी) वह धर्मको (वैसे ही) नहीं जान सकता, जैसे कि कलछी (=दब्बी=दर्वी) सूप (=दाल आदि) के रस को।

श्रावस्ती (जेतवन) — भद्रवर्गीय (भिक्षु लोग)

६५—मुहुत्तमपि चे विञ्ञू पण्डितं पयिरुपासति ।
खिप्पं धम्मं विजानाति जिह्वा सूपरसं यथा ॥६॥

(मुहूर्तमपि चेद् विज्ञः पंडितं पर्युपास्ते ।
क्षिप्रं धर्मं विजानाति जिह्वा सूपरसं यथा ॥६॥)

अनुवाद—चाहे विज्ञ (पुरुष) एक मुहूर्त ही पंडितकी सेवामें रहे (तो भी वह) शीघ्र ही धर्मको जान सकता है, जैसे कि जिह्वा सूपके रस को।

राजगृह (वेणुवन) — सुप्पबुद्ध (कोढ़ी)

६६—चरन्ति बाला दुम्मेधा अमित्तेनेव अत्तना ।
करोन्तो पापकं कम्मं यं होति कटुकप्फलं ॥७॥

(चरन्ति बाला दुर्मेधसोऽमित्रेणैवात्मना ।
कुर्वन्तः पापकं कर्म यद् भवति कटुकफलम् ॥७॥)

अनुवाद—पाप कर्मको—जो कि कटु फल देनेवाला होता है—करके दुष्ट बुद्धि अज्ञ (जन) अपने ही अपने शत्रु बनते हैं।

जेतवन　　　　कोई कस्सप

६७–न तं कम्मं कतं साधु यं कत्वा अनुतप्पति ।
यस्स अस्सुमुखो रोदं विपाकं पटिसेवति ॥८॥

(न तत् कर्म कृतं साधु यत् कृत्वाऽनुतप्यते।
यस्याश्रुमुखो रुदन् विपाकं प्रतिसेवते ॥८॥)

अनुवाद—उस कामका करना ठीक नहीं, जिसे करके (पीछे) अनुताप करना पड़े, और जिसके फलको अश्रुमुख रोते भोगना पड़े।

राजगृह (वेणुवन)　　　　सुमन (माली)

६८–तञ्च कम्मं कतं साधु यं कत्वा नानुतप्पति ।
यस्स पतीतो सुमनो विपाकं पटिसेवति ॥९॥

(तच्च कर्म कृतं साधु यत् कृत्वा नानुतप्यते।
यस्य प्रतीतः सुमनो विपाकं प्रतिसेवते ॥९॥)

अनुवाद—उसी कामका करना ठीक है, जिसे करके अनुताप करना (=पछताना) न पड़े, और जिसके फल को प्रसन्न मन से भोग करे।

जेतवन　　　　उप्पलवण्णा (थेरी)

६९–मधू'व मञ्ञति बालो याव पापं न पच्चति ।
यदा च पच्चती पापं अथ दुक्खं निगच्छति ॥१०॥

(मध्विव मन्यते बालो यावत् पापं न पच्यते।
यदा च पच्यते पापं अथ दुःखं निगच्छति ॥१०॥)

अनुवाद—जब (तक) पापका परिपाक नहीं होता, तब तक उसे मधुके समान जानता है। जब पाप का परिपाक होता है तो दुःखी होता है।

राजगृह (वेळुवन) जम्बुक (आजीवक साधु)

७०—मासे मासे कुसग्गेन बालो भुञ्जेय भोजनं।
न सो सङ्खतधम्मानं कलं अग्घति सोळसिं ॥११॥

(मासे मासे कुशाग्रेण बालो भुञ्जीत भोजनम्।
न स संख्यातधर्माणां कलामर्हति षोडशीम् ॥११॥)

अनुवाद—यदि बाल (पुरुष) कुशकी नोकसे महीने महीने पर खाना खाये तो भी धर्म के जानकारों के सोलहवें भाग के भी बराबर (वह पुरुष) नहीं हो सकता।

राजगृह (वेळुवन) अहिप्रेत

७१—न हि पापं कतं कम्मं सज्जु खीरं 'व मुच्चति।
डहन्तं बालमन्वेति भस्माछन्नो 'व पावको ॥१२॥

(नहि पापं कृतं कर्म सद्यः क्षीरमिव मुच्यति।
दहन् बालमन्वेति भस्माच्छन्न इव पावकः ॥१२॥)

अनुवाद—ताजे दूध की भाँति किया पाप कर्म (तुरन्त) विकार नहीं लाता वह भस्मसे ढँकी आगकी भाँति दग्ध करता अज्ञानका पीछा करता है।

राजगृह (वेणुवन) सट्ठिकूठ (प्रेत)

७२—यावदेव अनत्थाय ञत्तं बालस्स जायति ।
हन्ति बालस्स सुक्कंसं मुद्धमस्स विपातयं ॥१३॥
(यावदेव अनर्थाय ज्ञप्तं बालस्य जायते ।
हन्ति बालस्य शुक्लांशं मूर्धानमस्य विपातयन् ॥१३॥)

अनुवाद—मूढ़ (= बाल) का जितना भी ज्ञान है, (वह उसके) अनर्थ के लिये होता है । वह उसकी मूर्धा (= शिर = प्रज्ञा) को गिराकर उसके शुक्ल (= धवल = शुद्ध) अंशका विनाश करता है ।

जेतवन सुधम्म (थेर)

७३—असतं भावनमिच्छेय्य पुरेक्खारञ्च भिक्खुसु ।
आवासेसु च इस्सरियं पूजा परकुलेसु च ॥१४॥
(असद्भावनमिच्छेत् पुरस्कारं च भिक्षुषु ।
आवासेषु चैश्वर्यं पूजा परकुलेषु च ॥१४॥)

७४—ममेव कतमञ्ञन्तु गिही पब्बजिता उभो ।
ममेवातिवसा अस्सू किच्चाकिच्चेसु किस्मिचि ।
इति बालस्स सङ्कप्पो इच्छा मानो च बड्ढति ॥१५॥
(ममैव कृतं मन्येता गृहि-प्रव्रजितावुभौ ।
ममैवातिवशा· स्याता कृत्याकृत्येषु केषु चित् ।
इति बालस्य संकल्प इच्छा मानश्च वर्द्धते ॥१५॥)

अनुवाद—अप्रस्तुत वस्तु की चाह करता है, भिक्षुओं में बड़ा बनना

(चाहता है) मठों (और विहारों) में स्वामीत्व (=ऐश्वर्य) और दूसरे कुलों में पूजा (चाहता है)। गृहस्थ और सन्यासी दोनों मेरे ही किए को मानें किसी भी कृत्याकृत्य में मेरे ही वशवर्ती हों—ऐसा मूढ़ का संकल्प होता है, (जिससे उसकी) इच्छा और अभिमान बढ़ते हैं।

श्रावस्ती (जेतवन) (वनवासी) तिस्स (थेर)

७५—अञ्ञा हि लाभूपनिसा अञ्ञा निब्बान-गामिनी।
एवमेतं अभिञ्ञाय भिक्खू बुद्धस्स सावको ॥
सक्कारं नाभिनन्देय्य विवेकमनुब्रूहये ॥१६॥

(अन्या हि लाभोपनिषद् अन्या निर्वाणगामिनी।
एवमेतद् अभिज्ञाय भिक्षुर्बुद्धस्य श्रावकः।
सत्कारं नाभिनन्देत् विवेकमनुबृंहयेत् ॥१६॥)

अनुवाद—लाभ का रास्ता दूसरा है और निर्वाण को ले जाने वाला दूसरा—इस प्रकार इसे जानकर बुद्ध का अनुगामी भिक्षु सत्कार का अभिनन्दन न करे और विवेक (=एकान्तचर्या) को बढ़ावे।

५—बालवग्ग समाप्त

६—पण्डितवग्गो

जेतवन — राध (थेर)

७६–निधीन' व पवत्तार य पस्से वज्जदस्सिन।
निग्गय्हवादिं मेधाविं तादिसं पण्डितं भजे।
तादिसं भजमानस्स सेय्यो होति न पापियो॥ १॥

(निधीनामिव प्रवक्तारं यं पश्येत् वर्ज्यदर्शिनम्।
निगृह्यवादिनं, मेधाविनं तादृशं पंडितं भजेत्।
तादृशं भजमानस्य श्रेयो भवति न पापीयः॥ १॥)

अनुवाद—(भूमिमें गुप्त) निधियों के बतलानेवाले की तरह, बुराईको दिखलानेवाले ऐसे संयमवादी, मेधावी पंडितकी सेवा करे। ऐसेके सेवन करनेवालेका कल्याण होता है, अमंगल नहीं (होता)।

जेतवन — अस्सजी, पुनब्बसु

७७—ओवदेय्यानुसासेय्य असब्भा च निवारये।
सतं हि सो पियो होति असतं होति अप्पियो॥२॥

(चाहता है) मठों (और विहारों) में स्वामीत्व (=ऐश्वर्य) और दूसरे कुलों में पूजा (चाहता है)। गृहस्थ और संन्यासी दोनों मेरे ही किए को मानें, किसी भी कृत्य-अकृत्य में मेरे ही वशवर्ती हों—ऐसा मूढ़ का संकल्प होता है, (जिससे उसकी) इच्छा और अभिमान बढ़ते हैं।

श्रावस्ती (जेतवन) (वनवासी) तिस्स (थेर)

७५—अञ्ञा हि लाभूपनिसा अञ्ञा निब्बान-गामिनी।
एवमेतं अभिञ्ञाय भिक्खू बुद्धस्स सावको॥
सक्कारं नाभिनन्देय्य विवेकमनुब्रूहये॥१६॥

(अन्या हि लाभोपनिषद् अन्या निर्वाणगामिनी।
एवमेतद् अभिज्ञाय भिक्षुर्बुद्धस्य श्रावकः।
सत्कारं नाभिनन्देत् विवेकमनुबृंहयेत्॥१६॥)

अनुवाद—लाभ का रास्ता दूसरा है और निर्वाण को ले जाने वाला दूसरा—इस प्रकार इसे जानकर बुद्ध का अनुगामी भिक्षु सत्कार का अभिनन्दन न करे और विवेक (=एकान्तचर्या) को बढ़ावे।

५—बालवग्गो समाप्त

पण्डित सामणेर

त्तिका

जन ।

नच्छका

पण्डिता ॥ ५ ॥

; नमयन्ति तेजनम् ।
मयन्ति पण्डिताः ॥५॥)

, बाण बनानेवाले बाणको ठीक
क करते हैं, और पण्डित (जन)

भद्दिय (थेर)

आतेन न समीरति ।
समिञ्जन्ति पण्डिता ॥६॥

वातेन न समीर्यते ।
न समीर्यन्ते पण्डिताः ॥६॥)

वा से कम्पायमान नहीं होता, ऐसे ही
प्रशंसा से विचलित नहीं होते ।

काण-माता

भीरो विप्पसन्नो अनाविलो ।
वान विप्पसीदन्ति पण्डिता ॥७॥

(चाहता है) मठों (और विहारों) में स्वामीत्व (=ऐश्वर्य) और दूसरे कुलों में पूजा (चाहता है)। गृहस्थ और संन्यासी दोनों मेरे ही किए को मानें, किसी भी कृत्य-अकृत्य में मेरे ही वशवर्ती हों—ऐसा मूर्ख का संकल्प होता है, (जिससे उसकी) इच्छा और अभिमान बढ़ते हैं।

श्रावस्ती (जेतवन) (वनवासी) तिस्स (थेर)

७५—अञ्ञा हि लाभूपनिसा अञ्ञा निब्बान-गामिनी।
एवमेतं अभिञ्ञाय भिक्खू बुद्धस्स सावको।
सक्कारं नाभिनन्देय्य विवेकमनुब्रूहये ॥१६॥

(अन्या हि लाभोपनिषद् अन्या निर्वाणगामिनी।
एवमेतद् अभिज्ञाय भिक्षुर्बुद्धस्य श्रावकः।
सत्कारं नाभिनन्देत् विवेकमनुबृंहयेत् ॥१६॥)

अनुवाद—लाभ का रास्ता दूसरा है, और निर्वाण को ले जाने वाला दूसरा—इस प्रकार इसे जानकर बुद्ध का अनुगामी भिक्षु, सत्कार का अभिनन्दन न करे और विवेक (=एकान्तचर्या) को बढ़ावे।

५—बालवग्ग समाप्त

जेतवन   पण्डित सामणेर

८०—उदकं हि नयन्ति नेत्तिका
उसुकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका
अत्तानं दमयन्ति पण्डिता ॥ ५ ॥

(उदकं हि नयन्ति नेतृका इषुकारा नमयन्ति तेजनम्।
दारु नमयन्ति तक्षका आत्मानं दमयन्ति पण्डिताः ॥५॥)

अनुवाद—नहरवाले पानी को ले जाते हैं, वाण बनानेवाले वाणको ठीक करते हैं, बढ़ई लकड़ी को ठीक करते हैं, और पण्डित (जन) अपना दमन करते हैं।

जेतवन   भद्दिय (थेर)

८१—सेलो यथा एकघनो वातेन न समीरति।
एवं निन्दापसंसासु न समिञ्जन्ति पण्डिता ॥६॥

(शैलो यथैकघनो वातेन न समीर्यते।
एवं निन्दाप्रशंसासु न समीर्यन्ते पण्डिताः ॥६॥)

अनुवाद—जैसे ठोस पहाड़ हवा से कपायमान नहीं होता, ऐसे ही पण्डित निन्दा और प्रशंसा से विचलित नहीं होते।

जेतवन   काण-माता

८२—यथापि रहदो गम्भीरो विप्पसन्नो अनाविलो।
एवं धम्मानि सुत्वान विप्पसीदन्ति पण्डिता ॥७॥

(अववदेयनुशिष्यात् असभ्याच्च निवारयेत्।
सतां हि स प्रियो भवति असतां भवत्यप्रियः ॥२॥)

अनुवाद—(जो) उपदेश देता है, अनुशासन करता है, और असभ्य (कर्म) से निवारण करता है, वह सत्पुरुषोंको प्रिय होता है और असत्पुरुषोंको अप्रिय।

जेतवन　　　　छन्न (थेर)

७८—न भजे पापके मित्ते न भजे पुरिसाधमे।
भजेथ मित्ते कल्याणे भजेथ पुरिसुत्तमे ॥३॥

(न भजेत् पापानि मित्राणि न भजेत् पुरुषाधमान्।
भजेत् मित्राणि कल्याणानि भजेत पुरुषोत्तमान् ॥३॥)

अनुवाद—बुरे मित्रोंका सेवन न करे, न अधम पुरुषोंका सेवन करे। अच्छे मित्रोंका सेवन करे, उत्तम पुरुषोंका सेवन करे।

जेतवन　　　　महाकप्पिन (थेर)

७९—धम्मपीती सुखं सेति विप्पसन्नेन चेतसा।
अरियप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पण्डितो ॥४॥

(धर्मप्रीतिः सुखं शेते विप्रसन्नेन चेतसा।
आर्यप्रवेदिते धर्मे सदा रमते पण्डितः ॥४॥)

अनुवाद—धर्म(-रस)का पान करनेवाला प्रसन्न-चित्त हो सुखपूर्वक सोता है, पंडित (जन) आर्योंके बतलाये धर्ममें सदा रमण करते हैं।

जेतवन पण्डित सामणेर

८०—उदकं हि नयन्ति नेत्तिका
उसुकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका
अत्तानं दमयन्ति पण्डिता ॥ ५ ॥

(उदकं हि नयन्ति नेतृका इषुकारा नमयन्ति तेजनम्।
दारु नमयन्ति तक्षका आत्मानं दमयन्ति पण्डिताः ॥५॥)

अनुवाद—नहरवाले पानी को ले जाते हैं, वाण बनानेवाले वाणको ठीक करते हैं, बढ़ई लकड़ी को ठीक करते हैं, और पण्डित (जन) अपना दमन करते हैं।

जेतवन भद्दिय (थेर)

८१—सेलो यथा एकघनो वातेन न समीरति।
एवं निन्दापसंसासु न समिञ्जन्ति पण्डिता ॥६॥

(शैलो यथैकघनो वातेन न समीर्यते।
एवं निन्दाप्रशंसासु न समीर्यन्ते पण्डिताः ॥६॥)

अनुवाद—जैसे ठोस पहाड़ हवा से कंपायमान नहीं होता, ऐसे ही पण्डित निन्दा और प्रशंसा से विचलित नहीं होते।

जेतवन काणा-माता

८२—यथापि रहदो गम्भीरो विप्पसन्नो अनाविलो।
एवं धम्मानि सुत्वान विप्पसीदन्ति पण्डिता ॥७॥

(यथापि ह्रदो गम्भीरो विप्रसन्नोऽनाविलः।
एवं धर्मान् श्रुत्वा विप्रसीदन्ति पण्डिताः ॥७॥)

अनुवाद—धर्मों को सुनकर पण्डित (जन) अथाह स्वच्छ, निर्मल सरोवर की भाँति स्वच्छ (सन्तुष्ट) होते हैं।

जेतवन — पाँच सौ भिक्षु

८३—सब्बत्थ वे सप्पुरिसा वजन्ति
न कामकामा लपयन्ति सन्तो।
सुखेन फुट्ठा अथवा दुखेन
न उच्चावचं पण्डिता दस्सयन्ति ॥ ८ ॥

(सर्वत्र वै सत्पुरुषा व्रजन्ति न कामकामा लपन्ति सन्तः।
सुखेन स्पृष्टा अथवा दुःखेन नोच्चावचं पण्डिता दर्शयन्ति ॥८॥)

अनुवाद—सत्पुरुष सभी जगह जाते हैं (वह) भोगों के लिए बात नहीं चलाते; सुख मिले या दुःख पण्डित (जन) विकार नहीं प्रदर्शित करते।

जेतवन — धम्मिक (थेर)

८४—न अत्तहेतु न परस्स हेतु
न पुत्तमिच्छे न धनं न रट्ठं।
न इच्छेय्य अधम्मेन समिद्धिमत्तनो
सीलवा पञ्ञवा धम्मिको सिया ॥ ९ ॥

(नात्महेतोः न परस्य हेतोः
　न पुत्रमिच्छेत न धनं न राष्ट्रम्।
नेच्छेद् अधर्मेण समृद्धिमात्मन
　स शीलवान् प्रज्ञावान् धार्मिकः स्यात् ॥९॥)

अनुवाद—जो अपने लिए या दूसरे के लिये पुत्र, धन, और राज्य नहीं चाहते, न अधर्मसे अपनी उन्नति चाहते हैं; वही सदाचारी (=शीलवान्) प्रज्ञावान् और धार्मिक हैं।

जेतवन　　　　धर्मश्रमण

८५—अप्पका ते मनुस्सेसु ये जना पारगामिनो ।
　अथायं इतरा पजा तीरमेवानुधावति ॥१०॥

(अल्पकास्ते मनुष्येषु ये जनाः पारगामिनः ।
अथेमा इतराः प्रजा तीरमेवानुधावति ॥१०॥

८६—ये च खो सम्मदक्खाते धम्मे धम्मानुवत्तिनो ।
　ते जना पारमेस्सन्ति मच्चुधेय्य सुदुत्तरं ॥११॥

(ये च खलु सम्यगाख्याते धर्मे धर्मानुवर्तिनः ।
ते जना पारमेष्यन्ति मृत्युधेयं सुदुस्तरम् ॥११॥)

अनुवाद—मनुष्योंमें पार जानेवाले जन विरले ही हैं, यह दूसरे लोग तो तीरे ही तीरे दौड़नेवाले हैं। जो सु याख्यात धर्मका अनुगमन करते हैं, वह मृत्युगृहीत अतिदुस्तर (संसार-सागर) को पार करेंगे।

जेतवन — पाँच सौ आगन्तुक भिक्षु

८७—कण्हं धम्मं विप्पहाय सुक्कं भावेथ पण्डितो।
ओका अनोकं आगम्म विवेके यत्थ दूरमं ॥१२॥

(कृष्णं धर्मं विप्रहाय शुक्लं भावयेत् पण्डितः।
ओकस् अनोकं आगम्य विवेके यत्र दूरमम् ॥१२॥)

८८—तत्राभिरतिमिच्छेय्य हित्वा कामे अकिञ्चनो।
परियोदपेय्य अत्तानं चित्तक्लेसेहि पण्डितो ॥१३॥

(तत्राभिरतिमिच्छेत् हित्वा कामान् अकिंचनः।
पर्यवदापयेत् आत्मानं चित्तक्लेशैः पण्डितः ॥१३॥)

अनुवाद—काले धर्म (=पाप) को छोड़कर पण्डित (जन) शुक्ल (=धर्म) का आचरण करे। घरसे बेघर हो जहाँ विवेक (=एकान्त) का सेवन करे। भोगोंको छोड़ सर्वस्वत्यागी हो वहीं रत रहनेकी इच्छा करे। पण्डित (जन) चित्त के मलोंसे अपनेको परिशुद्ध करे।

८९ येसं सम्बोधिअङ्गेसु सम्मा चित्तं सुभावितं।
आदानपटिनिस्सग्गे अनुपादाय ये रता।
खीणासवा जुतीमन्तो ते लोके परिनिब्बुता ॥१४॥

(येषां सम्बोध्यंगेषु सम्यक् चित्तं सुभावितम्।
आदानप्रतिनिःसर्गे अनुपादाय ये रताः।
क्षीणास्रवा ज्योतिष्मन्तस्ते लोके परिनिर्वृताः ॥१४॥)

अनुवाद—संबोधि (=परम ज्ञान) के अंगों (=संबोध्यंगों) में जिनका चित्त भली प्रकार परिभावित (=अभ्यस्त,) हो गया है;

जो परिग्रह के परित्याग पूर्वक अपरिग्रह में रत हैं। ऐसे, चित्त के मलों से निर्मुक्त (=क्षीणास्रव), धुतिमान् (पुरुष) लोक में निर्वाण को प्राप्त हैं।

६ पण्डितवर्ग समाप्त

७—अर्हन्तवग्गो

राजगृह (जीवक का आम्रवन) जीवक

९०—गतद्धिनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बधि ।
सब्बगन्थप्पहीणस्स परिळाहो न विज्जति ॥१॥

(गताध्वनो विशोकस्य विप्रमुक्तस्य सर्वथा ।
सर्वग्रन्थप्रहीणस्य परिदाहो न विद्यते ॥१॥)

अनुवाद—जिसका मार्ग (-गमन) समाप्त हो चुका है जो शोक-रहित तथा सर्वथा मुक्त है, जिसकी सभी ग्रन्थियाँ क्षीण हो गई हैं ; उसके लिये सन्ताप नहीं है ।

राजगृह (वेणुवन) महाकस्सप

९१—उय्युञ्जन्ति सतीमन्तो न निकेते रमन्ति ते ।
हंसा 'व पल्ललं हित्वा ओकमोकं जहन्ति ते ॥२॥

(उद्युञ्जते स्मृतिमन्तो न निकेते रमन्ति ते ।
हंसा इव पल्वलं हित्वा ओकमोकं जहति ते ॥२॥)

अनुवाद—सचेत हो वह उद्योग करते हैं, (गृह-सुख) में रमण नहीं करते, हंस जैसे क्षुद्र जलाशय को छोडकर चले जाते हैं, (वैसे ही वह अर्हत्) गृह को छोड़ जाते हैं।

जेतवन वेलट्ठि सीस

९२—येस सन्निचयो नत्थि ये परिञ्ञातभोजना।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो।
आकासे 'व सकुन्तानं गति तेसं दुरन्नया ॥३॥

(येषां सन्निचयो नास्ति ये परिज्ञातभोजनाः।
शून्यतोऽनिमित्तश्च विमोक्षो यस्य गोचर।
आकाश इव शकुन्ताना गति तेषा दुरन्वया ॥३॥)

अनुवाद—जो (वस्तुओं का) संचय नहीं करते, जिनका भोजन नियत है, शून्यता-स्वरूप तथा कारण-रहित मोक्ष (= निर्वाण) जिनको दिखाई पड़ता है, उनकी गति (= गंतव्य स्थान) आकाश में पक्षियों की (गति की) भाँति अज्ञेय है।

राजगृह (वेणुवन) अनुरुद्ध (थेर)

९३—यस्सा 'सवा परिक्खीणा आहारे च अनिस्सितो।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो।
आकासे 'व सकुन्तानं पदं तस्स दुरन्नयं ॥४॥

(यस्यास्रवा परिक्षीणा आहारे च अनिस्रृतः।
शून्यतोऽनिमित्तश्च विमोक्षो यस्य गोचरः।
आकाश इव शकुन्तानां पदं तस्य दुरन्वयम् ॥४॥)

७—अर्हन्तवग्गो

राजगृह (जीवक का आम्रवन) जीवक

९०—गतद्धिनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बधि ।
सब्बगन्थप्पहीनस्स परिळाहो न विज्जति ॥१॥

(गताध्वनो विशोकस्य विप्रमुक्तस्य सर्वथा ।
सर्वग्रन्थप्रहीणस्य परिदाहो न विद्यते ॥१॥)

अनुवाद—जिसका मार्ग (गमन) समाप्त हो चुका है, जो शोक-रहित तथा सर्वथा मुक्त है, जिसकी सभी ग्रन्थियाँ क्षीण हो गई हैं, उसके लिए सन्ताप नहीं है।

राजगृह (वेणुवन) महाकस्सप

९१—उय्युञ्जन्ति सतीमन्तो न निकेते रमन्ति ते ।
हंसा 'व पल्ललं हित्वा ओकमोकं जहन्ति ते ॥२॥

(उद्युञ्जते स्मृतिमन्तो न निकेते रमन्ति ते ।
हंसा इव पल्वलं हित्वा ओकमोकं जहति ते ॥२॥)

(पृथिवीसमो न विरुध्यते इन्द्रकीलोपमस्तादृक् सुव्रतः ।
ह्रद इवापेतकर्दमः संसारा न भवन्ति तादृशः ॥६॥)

अनुवाद—वैसा सुन्दर व्रतधारी इन्द्रकीलके समान (अचल) तथा पृथिवीके समान जो क्षुब्ध नहीं होता; ऐसे (पुरुष) में कर्दमरहित सरोवरकी भाँति संसार (मल) नहीं रहता ।

जेतवन कोसम्बिवासित तिस्स (थेर)

९६–सन्तं तस्स मनं होति सन्ता वाचा च कम्म च ।
सम्मदञ्ञाविमुत्तस्स उपसन्तस्स तादिनो ॥७॥
(शान्तं तस्य मनो भवति शान्ता वाक् च कर्म च ।
सम्यगाज्ञाविमुक्तस्य उपशान्तस्य तादृशः ॥७॥)

अनुवाद—उपशान्त और यथार्थ ज्ञानद्वारा मुक्त हुये उस (अर्हत् पुरुष) का मन शान्त होता है, वाणी और कर्म शान्त होवे हैं ।

जेतवन सारिपुत्र (थेर)

९७–अस्सद्धो अकतञ्ञू च सन्धिच्छेदो च यो नरो ।
हतावकासो वन्तासो स वे उत्तमपोरिसो ॥८॥

(अश्रद्धोऽकृतज्ञश्च सन्धिच्छेदश्च यो नरः ।
हतावकाशो वान्ताश स वै उत्तम पुरुष ॥८॥)

अनुवाद—जो (मूढ़-) श्रद्धारहित, अकृत (= बिना बनाये = निर्वाण)-ज्ञ, (ससारकी) सँधिका छेदन करनेवाला, अवकाशरहित,

अनुवाद—जिसके आस्रव (=मल) क्षीण हो गए, जो आहार में आसक्त नहीं, जो शून्यता रूप ।

श्रावस्ती (पूर्वाराम) महाकच्चायन

९४—यस्सिन्द्रियानि समथं गतानि,
अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता ।
पहीनमानस्स अनासवस्स,
देवापि तस्स पिहयन्ति तादिनो ॥५॥

(यस्येन्द्रियाणि शमतां गतानि,
अश्वा यथा सारथिना सुदान्ताः ।
प्रहीणमानस्य अनास्रवस्य देवा,
अपि तस्य स्पृहयन्ति तादृशः ॥५॥)

अनुवाद—सारथी द्वारा सुदान्त (=सुशिक्षित) अश्वों की भाँति जिसकी इन्द्रियाँ शान्त हैं, जिसका अभिमान नष्ट हो गया (और) जो आस्रवरहित है, ऐसे उस (पुरुष) की देवता भी स्पृहा करते हैं।

जेतवन सारिपुत्त (थेर)

९५—पठवीसमो नो विरुज्झति
इन्दखीलूपमो तादि सुब्बतो ।
रहदो 'व अपेतकद्दमो
संसारा न भवन्ति तादिनो ॥६॥

(विषय-) भोगको वमनकर दिया गया है वही उत्तम पुरुष है।

जेतवन (खदिरवनी) रेवत (थेर)

९८—गामे वा यदि वा'रञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रामणेय्यकं ॥९॥

(ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये निम्ने वा यदि वा स्थले।
यत्रार्हन्तो विहरन्ति सा भूमि रमणीया ॥९॥)

अनुवाद—गाँवमें या जंगलमें निम्न या (ऊँचे) स्थलमें जहाँ (कहीं) अर्हत् (लोग) विहार करते हैं वही रमणीय भूमि है।

जेतवन आरण्यक भिक्षु

९९—रमणीयानि अरञ्ञानि यत्थ न रमती जनो।
वीतरागा रमिस्सन्ति न ते कामगवेसिनो ॥१०॥

(रमणीयान्यरण्यानि यत्र न रमते जनः।
वीतरागा रंस्यन्ते न ते कामगवेषिणः ॥१०॥)

अनुवाद—(वह) रमणीय वन जहाँ (साधारण) जन रमण नहीं करते, काम (भोगों) के पीछे न भटकनेवाले वीतराग रमण करेंगे।

७—अर्हद्वग्ग समाप्त

(विषय-) भोगको वमनकर दिया गया है, वही उत्तम पुरुष है।

जेतवन (खदिरवनी) रेवत (थेर)

९८ गामे वा यदि वा'रञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रामणेय्यकं ॥९॥

(ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये निम्ने वा यदि वा स्थले।
यत्रार्हन्तो विहरन्ति सा भूमी रमणीया ॥९॥)

अनुवाद—गाँवमें या जंगलमें, निम्न या (ऊँचे) स्थलमें जहाँ (कहीं) अर्हत (लोग) विहार करते हैं वही रमणीय भूमि है।

जेतवन आरण्यक भिक्षु

९९-रमणीयानि अरञ्ञानि यत्थ न रमते जनो।
वीतरागा रमिस्सन्ति न ते कामगवेसिनो ॥१०॥

(रमणीयान्यरण्यानि यत्र न रमते जनः।
वीतरागा रंस्यन्ते न ते कामगवेषिणः ॥१०॥)

अनुवाद—(वह) रमणीय वन में जहाँ (साधारण) जन रमण नहीं करते, काम (भोगों) के पीछे न भटकनेवाले वीतराग रमण करेंगे।

७—अर्हद्वग्ग समाप्त

(विषय-) भोगको वमनकर दिया वह है वही उत्तम पुरुष है।

जेतवन (खदिरवनी) रेवत (थेर)

९८—गामे वा यदि वा'रञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रामणेय्यकं ॥९॥

(ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये निम्ने वा यदि वा स्थले।
यत्रार्हन्तो विहरन्ति सा भूमी रमणीया ॥९॥)

अनुवाद—गाँवमें या जंगलमें, निम्न या (ऊँचे) स्थलमें जहाँ (कहीं) अर्हत् (लोग) विहार करते हैं वही रमणीय भूमि है।

जेतवन आरण्यक भिक्षु

९९—रमणीयानि अरञ्ञानि यत्थ न रमते जनो।
वीतरागा रमिस्सन्ति न ते कामगवेसिनो ॥१०॥

(रमणीयान्यरण्यानि यत्र न रमते जनः।
वीतरागा रमन्ते न ते कामगवेषिणः ॥१०॥)

अनुवाद—(वह) रमणीय वन हैं जहाँ (साधारण) जन रमण नहीं करते, काम (भोगों) के पीछे न भटकनेवाले वीतराग रमण करेंगे।

७—अर्हद्वग्ग समाप्त

(विषय-) भोगको वमनकर दिया गया है वही उत्तम पुरुष है।

जेतवन (खदिरवनी) रेवत (थेर)

९८—गामे वा यदि वा'रञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रामणेय्यकं ॥९॥

(ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये निम्ने वा यदि वा स्थले।
यत्रार्हन्तो विहरन्ति सा भूमी रमणीया ॥९॥)

अनुवाद—गाँवमें या जंगलमें निम्न या (ऊँचे) स्थलमें जहाँ (कहीं) अर्हत् (लोग) विहार करते हैं वही रमणीय भूमि है।

जेतवन आरण्यक भिक्षु

९९—रमणीयानि अरञ्ञानि यत्थ न रमती जनो।
वीतरागा रमिस्सन्ति न ते कामगवेसिनो ॥१०॥

(रमणीयान्यरण्यानि यत्र न रमते जनः।
वीतरागा रंस्यन्ते न ते कामगवेषिणः ॥१०॥)

अनुवाद—(वह) रमणीय वन जहाँ (साधारण) जन रमण नहीं करते, काम (भोगों) के पीछे न भटकनेवाले वीतराग रमण करेंगे।

७—अर्हद्वग्ग समाप्त

(धर्मं चरेत् सुचरितं न तं दुश्चरितं चरेत्।
धर्मचारी सुखं शेतेऽस्मिन् लोके परत्र च ।।३।।)

अनुवाद—उत्साही बने, आलसी न बने, सुचरित धर्म का आचरण करे धर्मचारी (पुरुष) इस लोक और परलोक में सुख-पूर्वक सोता है। सुचरित धर्म का आचरण करे, दुश्चरित धर्म (= पाप) का सेवन न करे। धर्मचारी (पुरुष) ।

जेतवन — पाँच सौ ध्यानी (भिक्षु)

१७०—यथा बुब्बुलकं पस्से यथा पस्से मरीचिकं।
एवं लोकं अवेक्खन्तं मच्चुराजा न पस्सति ।।४।।

(यथा बुद्बुदकं पश्येद् यथा पश्येत् मरीचिकाम्।
एवं लोकमवेक्षमाणं मृत्युराजो न पश्यति ।।४।।)

अनुवाद—जैसे बुल्ले को देखता है, जैसे (मृग-) मरीचिका को देखता है, लोकको वैसे ही (जो पुरुष) देखता है, उसको ओर यमराज (आँख उठाकर) नहीं देख सकता।

राजगृह (वेणुवन) — अभय राजकुमार

१७१—एथ पस्सथिमं लोकं चित्तं राजरथूपमं।
यत्थ बाला विसीदन्ति, नत्थि सङ्गो विजानतं ।।५।।

(एत पश्यतेमं लोकं चित्रं राजरथोपमम्।
यत्र बाला विषीदन्ति नास्ति सङ्गो विजानताम् ।।५।।)

अनुवाद—आओ, विचित्र राजपथके समान इस लोकको देखो, जिसमें मूढ़ आसक्त होते हैं, ज्ञानी जन आसक्त नहीं होते।

जेतवन सम्मुञ्जानि (थेर)

१७२—यो च पुब्बे पमज्जित्वा पच्छा सो नप्पमज्जति।
सो'मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो' व चन्दिमा ॥६॥

(यश्च पूर्वं प्रमाद्य पश्चात् स न प्रमाद्यति।
स इमं लोकं प्रभासयत्यभ्रान्मुक्त इव चन्द्रमा ॥६॥)

अनुवाद—जो पहिले भूल कर फिर भूल नहीं करता, वह मेघ से उन्मुक्त चन्द्रमा की भाँति इस लोकको प्रकाशित करता है।

जेतवन अंगुलिमाल (थेर)

१७३—यस्स पापं कतं कम्मं कुसलेन पिधिय्यति।
सो'मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो'व चन्दिमा ॥ ७ ॥

(यस्य पापं कृतं कर्म कुशलेन पिधीयते।
स इमं लोकं प्रभासयत्यभ्रान्मुक्त इव चन्द्रमा ॥७॥)

अनुवाद—जो अपने किये पाप कर्मोंको पुण्यसे ढांक देता है, वह मेघसे उन्मुक्त०।

आलवी रंगरेजकी कन्या

१७४—अन्धभूतो अयं लोको तनुकेत्थ विपस्सति।
सकुन्तो जालमुत्तो'व अप्पो सग्गाय गच्छति ॥८॥

(अन्धभूतोऽयं लोकः तनुकोऽत्र विपश्यति।
शकुन्तो जालमुक्त इवाल्पः स्वर्गाय गच्छति ॥८॥)

अनुवाद—यह लोक अन्धे जैसा है, यहाँ देखनेवाले थोड़े ही हैं, जाल से मुक्त पक्षीकी भाँति विरले ही स्वर्गको जाते हैं।

जेतवन तीस भिक्षु

१७५—हंसादिच्चपथे यन्ति आकासे यन्ति इद्धिया।
नीयन्ति धीरा लोकम्हा जेत्वा मारं सवाहिनिं ॥९॥

(हंसा आदित्यपथे यान्ति आकाशे यान्ति ऋद्ध्या।
नीयन्ते धीरा लोकात् जित्वा मारं सवाहिनीम् ॥९॥)

अनुवाद—हंस सूर्यपथ (=आकाश) में जाते हैं (योगी) ऋद्धि(-बल)से आकाश में जाते हैं धीर (पुरुष) सेना-सहित मारको पराजित कर लोकसे (निर्वाणको) ले जाये जाते हैं।

जेतवन चिञ्चा (माणविका)

१७६—एकं धम्मं अतीतस्स मुसावादिस्स जन्तुनो।
वितिण्णपरलोकस्स नत्थि पापं अकारियं ॥१०॥

(एकं धर्ममतीतस्य मृषावादिनो जन्तोः।
वितीर्णपरलोकस्य नास्ति पापमकार्यम् ॥१०॥)

अनुवाद—जो धर्मको अतिक्रमण कर चुका, जो भाषी मृषावादी है, जो परलोक (का ख्याल) छोड़ चुका है, उसके लिए कोई पाप अकरणीय नहीं।

जेतवन (असदृश दान)

१७७—न (वे) कदरिया देवलोकं वजन्ति
बाला ह वे न प्पसंसन्ति दानं।

धीरो च दानं अनुमोदमानो
तेनेव सो होति सुखी परत्थ ॥११॥

(न [वै] कदर्या देवलोकं व्रजंति
बाला ह वै न प्रशंसंति दानम्।
धीरश्च दानं अनुमोदमानस्तेनैव
स भवति सुखी परत्र ॥११॥)

अनुवाद—कंजूस देवलोक नहीं जाते, मूढ़ हीं दानकी प्रशंसा नहीं करते; धीर दानका अनुमोदन कर, उसी (कर्म) से पर (लोक) में सुखी होता है।

जेतवन अनाथपिण्डिकके पुत्रका मरण

१७८—पथव्या एकरज्जेन सग्गस्स गमनेन वा।
सब्बलोकाधिपत्त्येन सोतापत्तिफलं वरं ॥१२॥

(पृथिव्या एकराज्यात् स्वर्गस्य गमनाद् वा।
सर्वलोकाऽऽधिपत्याद् वा स्रोतआपत्तिफलं वरम् ॥१२॥)

अनुवाद—(सारी) पृथिवीका अकेला राजा होनेसे, या स्वर्गके गमनसे, (या) सभी लोकों के अधिपति होने से भी स्रोतआपत्ति* फल (का मिलना) श्रेष्ठ है।

१३—लोकवर्ग समाप्त

* जो पुरुष निर्वाण-गामी मार्ग पर इस प्रकार आरूढ़ हो जाता है, कि फिर वह उससे भ्रष्ट नहीं हो सकता, उसे स्रोत-आपन्न (=धार में पड़ा) कहते हैं। इसी पद के लाभको स्रोत-आपत्ति-फल कहते हैं।

१४—बुद्धवग्गो

उरुवेला (बोधिमंड) — मागन्दिय (ब्राह्मण)

१७९—यस्स जितं नावजीयति
जितमस्स नो याति कोचि लोके।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ? ॥१॥

(यस्य जितं नावजीयते
जितमस्य न याति कश्चिल्लोके।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेष्यथ ? ॥१॥)

१८०—यस्स जालिनी विसत्तिका
तण्हा नत्थि कुहिञ्चि नेतवे।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ? ॥२॥

(यस्य जालिनी विषात्मिका तृष्णा
नास्ति कुत्रचित् नेतुम्।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेष्यथ ? ॥२॥)

अनुवाद—जिसका जीता बेजीता नहीं किया जा सकता, जिसके जीते (राग, द्वेष, मोह फिर) नहीं लौटते, उस अपद (= स्थान-रहित), अनन्तगोचर (= अनन्त को देखनेवाले) बुद्धको किस पथ से प्राप्त करोगे ? जिसकी जाल फैलानेवाली विष-रूपी तृष्णा कहीं भी लेजाने लायक नहीं रही; उस अपद ०।

संकास्य नगर देव, मनुष्य

१८१—ये झानपसुता धीरा नेक्खम्मूपसमे रता ।
देवापि तेसं पिहयन्ति सम्बुद्धानं सतीमतं ॥३॥
(ये ध्यानप्रसिता धीरा नैष्कर्म्योपशमे रताः ।
देवा अपि तेषां स्पृहयन्ति संबुद्धानां स्मृतिमताम् ॥३॥)

अनुवाद—जो धीर ध्यानमें लग्न, निष्कर्मता और उपशम में रत हैं, उन स्मृतिमान् (= सचेत) बुद्धोंकी देवता भी स्पृहा (= होड़) करते हैं।

वाराणसी एरकपत्त (नागराज)

१८२—किच्छो मनुस्सपटलाभो किच्छं मच्चानं जीवितं ।
किच्छं सद्धम्मसवणं किच्छो बुद्धानं उप्पादो ॥४॥

(कृच्छ्रो मनुष्यप्रतिलाभः कृच्छ्रं मर्त्यानां जीवितम् ।
कृच्छ्रं सद्धर्मश्रवणं कृच्छ्रो बुद्धानां उत्पादः ॥४॥)

अनुवाद—मनुष्य (योनि) का लाभ कठिन है, मनुष्यका जीवन (मिलना) कठिन है, सच्चा धर्म सुननेको मिलना कठिन है, बुद्धों (= परम ज्ञानियों) का जन्म कठिन है।

जेतवन — आनन्द (थेर) का प्रश्न

१८३–सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा ।
स-चित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं ॥ ५ ॥

(सर्वपापस्याकरणं कुशलस्योपसम्पदा ।
स्वचित्तपर्यवदापनं एतद् बुद्धानां शासनम् ॥५॥)

अनुवाद—सारे पापोंका न करना, पुण्य का संचय करना अपने चित्तको परिशुद्ध करना यह है बुद्धोंकी शिक्षा ।

जेतवन — आनन्द (थेर)

१८४–खन्ती परमं तपो तितिक्खा,
निब्बाणं परमं वदन्ति बुद्धा ।
नहि पब्बजितो परूपघाती,
समणो होति परं विहेठयन्तो ॥ ६ ॥

(क्षान्तिः परमं तपः तितिक्षा निर्वाणं परमं वदन्ति बुद्धाः ।
नहि प्रव्रजितः परोपघाती श्रमणो भवति परं विहेठयन् ॥६॥)

१८५–अनुपवादो अनुपघातो पातिमोक्खे च संवरो ।
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं पन्तञ्च सयनासनं ।
अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धान सासनं ॥७॥

(अनुपवादोऽनुपघातः प्रातिमोक्षे च संवरः ।
मात्राज्ञता च भक्ते प्रान्तं च शयनासनम् ।
अधिचित्ते चायोग एतद् बुद्धानां शासनम् ॥७॥)

अनुवाद—क्षमा परम तप, और तितिक्षा है, बुद्ध निर्वाण को परम (=उत्तम) बतलाते हैं, दूसरे का घात करनेवाला; दूसरे-को पीड़ित करनेवाला प्रव्रजित (=गृहत्यागी), श्रमण (=संन्यासी) नहीं हो सकता। निन्दा न करना, घात न करना, प्रातिमोक्ष (=भिक्षु-नियम, आचार-नियम) द्वारा अपने को सुरक्षित रखना, परिमाण जानकर भोजन करना, एकान्त में सोना-बैठना (=शयनासन=निवासगृह); चित्त को योग में लगाना, यह बुद्धोंकी शिक्षा है।

जेतवन (उदास भिक्षु)

१८६–न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति।
अप्पस्सादा दुखा कामा इति विञ्ञाय पण्डितो॥८॥

(न कार्षापणवर्षेण तृप्तिः कामेषु विद्यते।
अल्पास्वादा दुःखा कामा इति विज्ञाय पण्डितः॥८॥)

१८७–अपि दिब्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति।
तण्हक्खयरतो होति सम्मासम्बुद्धसावको॥९॥

(अपि दिव्येषु कामेषु रतिं स नाऽधिगच्छति।
तृष्णाक्षयरतो भवति सम्यक्संबुद्धश्रावकः॥९॥)

अनुवाद—यदि रुपयों (=कहापण) की वर्षा हो, तो भी (मनुष्य) की कामों (=भोगों) से तृप्ति नहीं हो सकती। (सभी) काम (=भोग) अल्प स्वाद, (और) दुःखद हैं ऐसा जानकर पंडित देवताओं के भोगों में भी रति नहीं करता, और सम्यक्संबुद्ध (=बुद्ध) का श्रावक (=अनुयायी) तृष्णा-को नाश कराने में लगता है।

जेतवन अग्निदत्त (ब्राह्मण)

१८८—बहुं वे सरणं यन्ति पब्बतानि वनानि च ।
आरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता ॥ १०॥
(बहु वै शरणं यन्ति पर्वतान् वनानि च ।
आरामवृक्षचैत्यानि मनुष्या भयतर्जिताः ॥१०॥)

१८९—नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमुत्तमं ।
नेतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥११॥
(नैतत् खलु शरणं क्षेमं नैतत् शरणमुत्तमम् ।
नैतत् शरणमागम्य सर्वदुःखात्प्रमुच्यते ॥११॥)

अनुवाद—मनुष्य भय के मारे पर्वत वन आराम (=उद्यान), वृक्ष चैत्य (=चौरा) (आदि को देवता मान उनकी) शरण में जाते हैं, किन्तु ये शरण मंगलदायक नहीं, ये शरण उत्तम नहीं, (क्योंकि) इन शरणों में आकर सब दुःखों से छुटकारा नहीं मिलता ।

जेतवन अग्निदत्त (ब्राह्मण)

१९०—योच बुद्धञ्च धम्मञ्च सङ्घञ्च सरणं गतो ।
चत्तारि अरियसच्चानि सम्मप्पञ्ञाय पस्सति ॥१२॥
(यश्च बुद्धं च धर्मं च संघं च शरणं गतः ।
चत्वार्यार्यसत्यानि सम्यक् प्रज्ञया पश्यति ॥१२॥)

१९१—दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं ।
अरियञ्चट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं ॥१३॥

(दुःख दुःखसमुत्पादं दुःखस्य चातिक्रमम् ।
आर्याष्टांगिकं मार्गं दुःखोपशमगामिनम् ॥१३॥)

१९२—एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं ।
एतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥४॥

(एतत् खलु शरणं क्षेमं एतत् शरणमुत्तमम् ।
एतत् शरणमागम्य सर्वदुःखात् प्रमुच्यते ॥१४॥)

अनुवाद—जो बुद्ध (=परमज्ञानी), धर्म (=सत्यज्ञान) और संघ (=परमज्ञानियोंके अनुयायियोंके समुदाय) की शरण गया, जो चारों आर्यसत्यों* को प्रज्ञासे भलीप्रकार देखता है। (वह चार सत्य हैं— (१) दुःख, (२) दुःखकी उत्पत्ति, (३) दुःखका अतिक्रमण, और (४, दुःख नाशक) आर्य-अष्टांगिक मार्ग*—जो कि दुःखको शमनकरनेकी ओर ले जाता है, ये हैं मंगलप्रद शरण, ये हैं उत्तम शरण, इन शरणोंको पाकर (मनुष्य) सारे दुःखोंसे छूट जाता है।

जेतवन　　　आनन्द (थेर) का प्रश्न

१९३—दुल्लभो पुरिसाजञ्ञो न सो सब्बत्थ जायति ।
यत्थ सो जायती धीरो तं कुलं सुखमेधति ॥१५॥

---

*दुःख, उसका कारण, उसका नाश, और नाशका उपाय—यह बुद्ध द्वारा आविष्कृत चार उत्तम सच्चाइयाँ हैं।

*आर्य-अष्टांगिक मार्ग है—ठीक धारणा, ठीक संकल्प, ठीक वचन, ठीक कर्म, ठीक जीविका, ठीक उद्योग ठीक स्मृति, और ठीक ध्यान।

(दुर्लभः पुरुषाजानेयो न स सर्वत्र जायते।
यत्र स जायते धीरः तत् कुलं सुखमेधते ॥१५॥)

अनुवाद—उत्तम पुरुष दुर्लभ है, वह सर्वत्र उत्पन्न नहीं होता। वह धीर (पुरुष) जहाँ उत्पन्न होता है, उस कुलमें सुखकी वृद्धि होती है।

जेतवन

बहुतसे भिक्षु

१९४—सुखो बुद्धानं उप्पादो सुखा सद्धम्मदेसना।
सुखा संघस्स सामग्गी समग्गानं तपो सुखो ॥१६॥

(सुखो बुद्धानां उत्पादः सुखा सद्धर्म-देशना।
सुखा संघस्य सामग्री समग्राणां तपः सुखम् ॥१६॥)

अनुवाद—सुखदायक है बुद्धोंका जन्म, सुखदायक है सच्चे धर्मका उपदेश, संघमें एकता सुखदायक है और सुखदायक है, एकतायुक्त हो तप करना।

चारिका समय

कस्सप बुद्धका सुवर्ण चैत्य

१९५—पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि व सावके।
पपञ्चसमतिक्कन्ते तिण्णसोकपरिद्दवे ॥१७॥

(पूजार्हान् पूजयतो बुद्धान् यदि वा श्रावकान्।
प्रपंचसमतिक्रान्तान् तीर्णशोकपरिद्रवान् ॥१७॥)

१९६—ते तादिसे पूजयतो निब्बुते अकुतोभये।
न सक्का पुञ्ञं संखातुं इमेत्तम्पि केनचि ॥१८॥

(तान् तादृशान् पूजयतो निर्वृतान् अकुतोभयान् ।
न शक्य पुण्यं संख्यातुं एवम्मात्रमपि केनचित् ॥१८॥)

अनुवाद—पूजनीय बुद्धों, अथवा (उनके) अनुगामियों—जो संसार को अतिक्रमणकर गये हैं, जो शोक भयको पारकर गये हैं—की पूजाके, (या) उन ऐसे मुक्त और निर्भर (पुरुषों) की पूजाके, पुण्यका परिमाण "इतना है"—यह नहीं कहा जा सकता ।

१४–बुद्धवर्ग समाप्त

———

१५—सुखवग्गो

शाक्य देश — ज्ञाति-कलहके शमनार्थ

१९७—सुसुखं वत ! जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो।
वेरिनेसु मनुस्सेसु विहराम अवेरिनो ॥१॥
(सुसुखं बत ! जीवामो वैरिष्ववैरिणः।
वैरिषु मनुष्येषु विहरामोऽवैरिणः ॥१॥)

१९८—सुसुखं वत ! जीवाम आतुरेसु अनातुरा।
आतुरेसु मनुस्सेसु विहराम अनातुरा ॥२॥
(सुसुखं बत ! जीवाम आतुरेष्वनातुराः।
आतुरेषु मनुष्येषु विहरामोऽनातुराः ॥२॥)

१९९—सुसुखं वत ! जीवाम उस्सुकेसु अनुस्सुका।
उस्सुकेसु मनुस्सेसु विहराम अनुस्सुका ॥३॥

सुसुखं बत ! जीवाम उत्सुकेष्वनुत्सुकाः।
उत्सुकेषु मनुष्येषु विहराम अनुत्सुकाः ॥३॥)

अनुवाद—वैरियोंके प्रति (भी) अवैरी हो, अहो ! हम (कैसा) सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं; वैरी मनुष्योंके बीच अवैरी होकर हम विहार करते हैं। भयभीत मनुष्योंमें अभय हो, अहो ! हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं; भयभीत मनुष्यों के बीच निर्भय होकर हम विहार करते हैं। उत्सुकों (=आसक्तो) में उत्सुकता-रहित हो० ।

पञ्चसाला (ब्राह्मणग्राम, मगध) मार

२००—सुसुखं वत ! जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं ।
पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभस्सरा यथा ॥४॥

(सुसुखं वत ! जीवामो येषां नो नास्ति किंचन ।
प्रीतिभक्ष्या भविष्यामो देवा आभास्वरा यथा ॥४॥)

अनुवाद—जिन हम (लोगों) के पास कुछ नहीं, अहो ! वह हम कितना सुखसे जीवन बिता रहे हैं। हम *आभास्वर* देवताओं की भाँति प्रीतिभक्ष्य (=प्रीति ही भोजन है जिनका) हैं।

जेतवन कोसलराज

२०१—जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो
उपसन्तो सुखं सेति हित्वा जयपराजयं ॥५॥

(जयो वैरं प्रसूते दुःखं शेते पराजित ।
उपशान्तः सुखं शेते हित्वा जयपराजयौ ॥५॥)

अनुवाद—विजय वैरको उत्पन्न करती है, पराजित (पुरुष) दुःखकी (नींद) सोता है; (राग आदि दोष जिसके) शान्त (हैं,

वह पुरुष) जय और पराजयको छोड़ सुखसे (और) सोता है।

जेतवन कोई उपासक

२०२—नत्थि रागसमो अग्गि, नत्थि दोससमो कलि।
नत्थि खन्धसमा दुक्खा नत्थि सन्तिपरं सुखं ॥६॥

(नास्ति रागसमोऽग्निः नास्ति द्वेषसमः कलिः।
नास्ति स्कन्धसमा दुःखा, नास्ति शान्तिपरं सुखम् ॥६॥)

अनुवाद—रागके समान अग्नि नहीं, द्वेषके समान मल नहीं, (पाँच) स्कन्धों (=समुदाय) के समान दुःख नहीं, शान्तिसे बढ़कर सुख नहीं।

आलवी एक उपासक

२०३—जिघच्छा परमा रोगा, सङ्खारा परमा दुखा।
एतं ञत्वा यथाभूतं निब्बाणं परमं सुखं ॥७॥

(जिघत्सा परमो रोगः, संस्काराः परमं दुःखम्।
एतद् ज्ञात्वा यथाभूतं निर्वाणं परमं सुखम् ॥७॥)

अनुवाद—भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़े दुःख हैं

रूप वेदना संज्ञा संस्कार, विज्ञान यह पाँच स्कन्ध हैं। वेदना, संज्ञा संस्कार विज्ञानके अन्दर हैं। पृथिवी जल अग्नि, वायु ही रूप स्कंध है। जिसमें न भारीपन है और जो न स्वयं वेदता है, वह विज्ञान स्कंध है। रूप (=Matter) और विज्ञान (=Mind) इन्हींसे मिलकर सारा संसार बना है।

यह जान, यथार्थ निर्वाण को सबसे बड़ा सुख (कहा जाता) है।

जेतवन (पसेनदि कोसलराज)

२०४–अरोग्यपरमा लाभा सन्तुठ्ठी परमं धनं ।
विस्सासपरमा ञाती निब्बाणं परमं सुखं ॥८॥

(आरोग्यं परमो लाभः, सन्तुष्टिः परमं धनम् ।
विश्वासः परमा ज्ञातिः, निर्वाणं परमं सुखम् ॥८॥)

अनुवाद—निरोग होना परम लाभ है, सन्तोष परम धन है, विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है, निर्वाण परम (= सबसे बड़ा) सुख है।

वैशाली तिस्स (थेरी)

२०५–पविवेकरसं पीत्वा रसं उपसमस्स च ।
निद्दरो होति निप्पापो धम्मपीतिरस पिवं ॥९॥

(प्रविवेकरसं पीत्वा रसं उपशमस्य च ।
निर्दरो भवति निष्पापो धर्मपीतिरसं पिवन् ॥९॥

अनुवाद—एकान्त (चिन्तन) के रस, तथा उपशम (= शान्ति) के रसको पीकर (पुरुष), निडर होता है, (और) धर्म का प्रेमरस पानकर निष्पाप होता है।

वेलुवग्राम (वेणुग्राम, वैशाली के पास) सक्क (देवराज)

२०६–साधु दस्सनमरियानं सन्निवासो सदा सुखो ।
अदस्सनेन बालानं निच्चमेव सुखी सिया ॥१०॥

वह पुरुष) जय और पराजयको छोड़ सुखसे (और) सोता है।

वेलुवन कोई कुलकन्या

२०२—नत्थि रागसमो अग्गि, नत्थि दोससमो कलि।
नत्थि खन्धसमा दुक्खा नत्थि सन्तिपरं सुखं ॥६॥

(नास्ति रागसमोऽग्नि नास्ति द्वेषसमः कलिः।
नास्ति स्कन्धसमा दुःखा, नास्ति शान्तिपरं सुखम् ॥६॥)

अनुवाद—रागके समान अग्नि नहीं द्वेषके समान मल नहीं, (पाँच) स्कन्धों (=समुदाय) के समान दुःख नहीं, शान्तिसे बढ़कर सुख नहीं।

आळवी एक उपासक

२०३—जिघच्छा परमा रोगा, सङ्खारा परमा दुखा।
एतं ञत्वा यथाभूतं निब्बानं परमं सुखं ॥७॥

(जिघत्सा परमो रोगः, संस्काराः परमं दुःखम्।
एतद् ज्ञात्वा यथाभूतं निर्वाणं परमं सुखम् ॥७॥)

अनुवाद—भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़े दुःख हैं

रूप वेदना संज्ञा संस्कार, विज्ञान यह पाँच स्कन्ध हैं। वेदना, संज्ञा संस्कार विज्ञानके अन्दर हैं। पृथिवी जल अग्नि, वायु ही रूप स्कन्ध है। जिसमें न भारीपन है और जो न जगह घेरता है, वह विज्ञान स्कन्ध है। रूप (=Matter) और विज्ञान (=Mind) इन्हींसे मिलकर सारा संसार बना है।

(तस्माद्धि धीरं च प्राज्ञं च बहुश्रुतं च
धुर्यशीलं व्रतवन्तमार्यम् ।
तं तादृशं सत्पुरुषं सुमेधसं
भजेत नक्षत्रपथमिव चन्द्रमा ॥१२॥)

अनुवाद—इसलिये धीर, प्राज्ञ, बहुश्रुत, उद्योगी, व्रती, आर्य एवं सुबुद्धि सत्पुरुषको वैसे ही सेवन करे, जैसे चन्द्रमा नक्षत्र-पथका (सेवन करता है)।

१५—सुखवर्ग समाप्त

———

(साधु दर्शनमार्याणां सन्निवासः सदा सुखः।
अदर्शनेन बालानां नित्यमेव सुखी स्याद् ॥१०॥)

२०७—बालसङ्गतिचारी हि दीघमद्धानं सोचति।
दुक्खो बालेहि संवासो अमित्तेनेव सब्बदा।
धीरो च सुखसंवासो ञातीनं'व समागमो ॥११॥

(बालसंगतिचारी हि दीर्घमध्वानं शोचति।
दुःखो बालैः संवासोऽमित्रेणेव सर्वदा।
धीरस्तु सुखसंवासो ज्ञातीनामिव समागमः ॥११॥)

अनुवाद—आर्यों*(=सत्पुरुषों) का दर्शन सुन्दर है, सन्तों के साथ निवास सदा सुखदायक होता है; मूर्खों के न दर्शन होने से (मनुष्य) सदा सुखी रहता है। मूर्खों की संगति में रहने वाला दीर्घ काल तक शोक करता है, मूर्खों का सहवास शत्रु की तरह सदा दुःखदायक होता है, बन्धुओं के समागम की भाँति धीरों का सहवास सुखद होता है।

वेळुवन शक्र (देवराज)

२०८—तस्मा हि धीरं च पञ्ञञ्च बहुस्सुतं च
धोरय्हसीलं वतवन्तमरियं।
तं तादिसं सप्पुरिसं सुमेधं
भजेथ नक्खत्तपथं'व चन्दिमा ॥१२॥

*निर्वाण के पथ पर अविचल रूपसे आरूढ़ स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी तथा निर्वाण प्राप्त अर्हत् इन चार प्रकारके पुरुषोंको आर्य कहते हैं।

(तस्माद्धि धीरं च प्राज्ञं च बहुश्रुतं च
धुर्यशीलं व्रतवन्तमार्यम् ।
तं तादृशं सत्पुरुषं सुमेधसं
भजेत नक्षत्रपथमिव चन्द्रमा ॥१२॥)

अनुवाद—इसलिये धीर, प्राज्ञ, बहुश्रुत, उद्योगी, व्रती, आर्य एव सुबुद्धि सत्पुरुषको वैसे ही सेवन करे, जैसे चन्द्रमा नक्षत्र-पथका (सेवन करता है)।

१५—सुखवर्ग समाप्त

———

१६—पियवग्गो

जेतवन — तीन भिक्षु

२०९—अयोगे युञ्जमत्तानं योगस्मिञ्च अयोजयं ।
अत्थं हित्वा पियग्गाही पिहेतत्तानुयोगिनं ॥ १ ॥

(अयोगे युञ्जन्नात्मानं योगे चायोजयन् ।
अर्थं हित्वा प्रिय-ग्राही स्पृहयेदात्मानुयोगिनम् ॥१॥)

२१०—मा पियेहि समागञ्छि अप्पियेहि कुदाचनं ।
पियानं अदस्सनं दुक्खं अप्पियानञ्च दस्सनं ॥ २ ॥

(मा प्रियैः समागच्छ अप्रियैः कदाचन ।
प्रियाणां अदर्शनं दुःख, अप्रियाणां च दर्शनम् ॥२॥)

२११—तस्मा पियं न कयिराथ पियापायो हि पापको ।
गन्था तेसं न विज्जन्ति येसं नत्थि पियाप्पियं ॥३॥

(तस्मात् प्रियं न कुर्यात्, प्रियापायो हि पापकः ।
ग्रन्थाः तेषां न विद्यन्ते येषां नास्ति प्रियाप्रियम् ॥३॥)

अनुवाद—अयोग (=अनासक्ति) में अपने को लगानेवाले, योग (=आसक्ति) में न योग देनेवाले, अर्थ (=स्वार्थ) छोड़ प्रिय का ग्रहण करनेवाले आत्माऽनुयोगी (पुरुष) की स्पृहा करे। प्रियों का संग मत करो, और न कभी अप्रियों का (का संग करो), प्रियो का न देखना दुःखद होता है, और अप्रियों का देखना (भी)। इसलिये प्रिय न बनावे, प्रियका नाश बुरा (लगता है), उनके (दिल में) गाँठ नहीं पड़ती, जिनके प्रिय अप्रिय नहीं होते।

जेतवन कोई कुटुम्बी

२१२–पियतो जायते सोको पियतो जायते भयं।
पियतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भय ?॥४॥

(प्रियतो जायते शोकः प्रियतो जायते भयम्।
प्रियतो विप्रमुक्तस्य नास्ति शोकः कुतो भयम्॥४॥)

अनुवाद—प्रिय (वस्तु) से शोक उत्पन्न होता है, प्रिय से भय उत्पन्न होता है, प्रिय (के बन्धन) से जो मुक्त है, उसे शोक नहीं है, फिर भय कहाँ से (हो) ?

जेतवन विशाखा (उपासिका)

२१३–पेमतो जायते सोको पेमतो जायते भयं।
पेमतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भय ?॥५॥

(प्रेमतो जायते शोकः प्रेमतो जायते भयम्।
प्रेमतो विप्रमुक्तस्य नाऽस्ति शोकः कुतो भयम्?॥५॥)

अनुवाद—प्रेम से शोक उत्पन्न होता है, प्रेम से भय उत्पन्न होता है, प्रेम से मुक्तको शोक नहीं फिर भय कहाँ से ?

वैशाली (कूटागारशाला) लिच्छवि लोग

२१४–रतिया जायते सोको रतिया जायते भयं ।
रतिया विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ॥६॥
(रत्या जायते शोको रत्या जायते भयम् ।
रत्या विप्रमुक्तस्य नाऽस्ति शोकः कुतो भयम् ॥६॥)

अनुवाद—रति (= राग) से शोक उत्पन्न होता है, रति से भय उत्पन्न होता है ।

जेतवन अनित्थिगन्धकुमार

२१५–कामतो जायते सोको कामतो जायते भयं ।
कामतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ॥७॥
(कामतो जायते शोकः कामतो जायते भयम् ।
कामतो विप्रमुक्तस्य नाऽस्ति शोकः कुतो भयम् ? ॥७॥)

अनुवाद—काम से शोक उत्पन्न होता है० ।

जेतवन कोई ब्राह्मण

२१६–तण्हाय जायते सोको तण्हाय जायते भयं ।
तण्हाय विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ? ॥८॥
(तृष्णाया जायते शोकः तृष्णाया जायते भयम् ।
तृष्णाया विप्रमुक्तस्य नाऽस्ति शोकः कुतो भयम् ? ॥८॥)

अनुवाद—तृष्णासे शोक उत्पन्न होता है० ।

राजगृह (वेणुवन) पाँच सौ बालक

२१७—सीलदस्सनसम्पन्नं धम्मट्ठं सच्चवादिनं ।
अत्तनो कम्म कुब्बानं तं जनो कुरुते पियं ॥६॥

(शीलदर्शनसम्पन्नं धर्मिष्ठं सत्यवादिनम् ।
आत्मन. कर्म कुर्वाणं तं जन. कुरुते प्रियम् ॥६॥)

अनुवाद—जो शील (= आचरण) और दर्शन (= विद्या) से सम्पन्न, धर्ममें स्थित, सत्यवादी और अपने कामको करनेवाला है, उस (पुरुष) को लोग प्रेम करते हैं ।

जेतवन (अनागामी)

२१८—छन्दजातो अनक्खाते मनसा च फुटो सिया ।
कामेसु च अप्पटिबद्धचित्तो उद्धंसोतो'-
ति वुच्चति ॥१०॥

(छन्दजातोऽनाख्याते मनसा च स्फुरित स्यात् ।
कामेषु चाऽप्रतिबद्धचित्त ऊर्ध्वस्रोता इत्युच्यते ॥१०॥)

अनुवाद—जो अकथ्य (-वस्तु = निर्वाण) का अभिलाषी है, (उसमें) जिसका मन लगा है, कामो (= भोगों) में जिसका चित्त बद्ध नहीं, वह ऊर्ध्वस्रोत कहा जाता है ।

ऋषिपतन नन्दियुत्त

२१९—चिरप्पवासिं पुरिसं दूरतो सोत्थिमागतं ।
ञातिमित्ता सुहज्जा च अभिनन्दन्ति आगतं ॥११॥

(चिरप्रवासिनं पुरुषं दूरतो स्वस्त्यागतम् ।
ज्ञातिमित्राणि सुहृदश्चाऽभिनन्दन्त्यागतम् ॥२१९॥)

२२०—तथेव कतपुञ्ञम्पि अस्मा लोका परं गतं ।
पुञ्ञानि पटिगण्हन्ति पियं ञातीव आगतं ॥२२०॥

(तथैव कृतपुण्यमप्यस्मात् लोकात् परं गतम् ।
पुण्यानि प्रतिगृह्णन्ति प्रियं ज्ञातिमिवागतम् ॥२२०॥)

अनुवाद—चिर-प्रवासी (= चिर काल तक परदेसमें रहे) दूर (देश) से सानन्द लौटे पुरुषका, जातिवाले, मित्र और सुहृद् अभिनन्दन करते हैं; इसी प्रकार पुण्यकर्मा (पुरुष) को इस लोकसे पर (लोक) में जानेपर (उसके) पुण्य (कर्म) प्रिय जाति (वालों) की भाँति स्वीकार करते हैं।

१६—प्रियवर्ग समाप्त

१७—कोधवग्गो

कपिलवस्तु (न्यग्रोधाराम) रोहिणी

२२१—कोधं जहे विप्पजहेय्य मान
सञ्ञोजनं सब्बमतिक्कमेय्य ।
तं नाम-रूपस्मि असज्जमान
अकिञ्चन नानुपतन्ति दुक्खा ॥१॥

(क्रोधं जह्याद् विप्रजह्यात् मानं
संयोजनं सर्वमतिक्रमेत ।
तं नाम-रूपयोरसज्यमानं
अकिंचनं नाऽनुपतन्ति दुःखानि ॥१॥)

अनुवाद—क्रोधको छोड़े, अभिमान का त्याग करे, सारे संयोजनों (=बंधनों) से पार हो जाये, ऐसे नाम-रूपमें आसक्त न होनेवाले, तथा परिग्रहरहित (पुरुष) को दुःख सन्ताप नहीं देते ।

आळवी (अग्गाळव चैत्य) कोई भिक्षु

२२२—यो वे उप्पतितं कोधं रथं भन्तं'व धारये ।
तमहं सारथिं ब्रूमि रस्मिग्गाहो इतरो जनो ॥२॥

(यो वै उत्पतितं क्रोधं रथं भ्रान्तमिव धारयेत् ।
तमहं सारथिं ब्रवीमि, रश्मिग्राह इतरो जनः ॥२॥)

अनुवाद—जो चढ़े क्रोधको भटकते रथकी भाँति रोक लेता है, उसे मैं सारथी कहता हूँ, दूसरे लोग लगाम पकड़नेवाले (मात्र) हैं।

राजगृह (वेणुवन) उत्तरा (उपासिका)

२२३—अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने ।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं ॥३॥

(अक्रोधेन जयेत् क्रोधं असाधुं साधुना जयेत् ।
जयेत् कदर्यं दानेन सत्येनाऽलीकवादिनम् ॥३॥)

अनुवाद—अक्रोधसे क्रोधको जीते, असाधुको साधु (=भलाई) से जीते, कृपणको दानसे जीते, झूठ बोलनेवालेको सत्यसे (जीते)।

जेतवन महामोग्गल्लान (थेर)

२२४—सच्चं भणे न कुज्झेय्य, दज्जा'प्पस्मिम्पि याचितो ।
एतेहि तीहि ठानेहि गच्छे देवान सन्तिके ॥४॥

(सत्यं भणेत् न कुप्येत्, दद्यादल्पेऽपि याचितः ।
एतैस्त्रिभिः स्थानैः गच्छेद् देवानामन्तिके ॥४॥)

अनुवाद—सच बोले, क्रोध न करे, थोड़ा भी माँगने पर दे, इन तीन बातोंसे (पुरुष) देवताओंके पास जाता है।

(साकेत = अयोध्या) ब्राह्मण

२२५—अहिंसका ये मुनयो निच्चं कायेन संवुता।
ते यन्ति अच्चुतं ठानं यत्थ गन्त्वा न सोचरे ॥५॥

(अहिंसका ये मुनयो नित्यं कायेन संवृता।
ते यन्ति अच्युतं स्थानं यत्र गत्वा न शोचन्ति ॥५॥)

अनुवाद—जो मुनि (लोग) अहिंसक, सदा कायामें संयम करनेवाले हैं, वह (उस) अच्युत स्थान (= जिस स्थान पर पहुंच फिर गिरना नहीं होता) को प्राप्त होते हैं, जहाँ जाकर फिर नहीं शोक किया जाता।

राजगृह (गृध्रकूट) राजगृह-श्रेष्ठीका पुत्र

२२६—सदा जागरमानानं अहोरत्तानुसिक्खिनं।
निब्बाणं अधिमुत्तानं अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥६॥

(सदा जाग्रतां अहोरात्रं अनुशिक्षमाणानाम्।
निर्वाणं अधिमुक्तानां अस्तं गच्छन्ति आस्रवाः ॥६॥)

अनुवाद—जो सदा जागता (= सचेत) रहता है, रातदिन (उत्तम) सीख सीखनेवाला होता है, और निर्वाण (प्राप्त कर) मुक्त हो गया है, उसके आस्रव (= चित्त मल) अस्त हो जाते हैं।

जेतवन अतुल (उपासक)

२२७—पोराणमेतं अतुल ! नेतं अज्जतनामिव।
निन्दन्ति तुण्हीमासीनं निन्दन्ति बहुभाणिनं।
मितभाणिम्पि निन्दन्ति
नत्थि लोके अनिन्दितो ॥ ७ ॥

(पुराणमेतद् अतुल ! नैतद् अद्यतनमेव।
निन्दन्ति तूष्णीमासीनं निन्दन्ति बहुभाषिणम्।
मितभाषिणमपि निन्दन्ति नाऽस्ति लोकेऽनिन्दितः ॥७॥)

२२८—न चाहु न च भविस्सति न चेतरहि विज्जति।
एकन्तं निन्दितो पोसो, एकन्तं वा पसंसितो॥८॥

(न चाऽभूत् न च भविष्यति न चैतर्हि विद्यते।
एकान्तं निन्दितः पुरुष एकान्तं वा प्रशंसितः ॥८॥)

अनुवाद—हे अतुल ! यह पुरानी बात है आजकी नहीं—(लोग) चुप बैठे हुये की निन्दा करते हैं और बहुत बोलनेवालेकी भी मितभाषी की भी निन्दा करते हैं दुनियामें अनिन्दित कोई नहीं है। बिल्कुल ही निन्दित या बिल्कुल ही प्रशंसित पुरुष न था न होगा, न आजकल है।

जेतवन अतुल (उपासक)

२२९—यञ्चे विञ्ञू पसंसन्ति अनुविच्च सुवे सुवे।
अच्छिद्दवुत्तिं मेधाविं पञ्ञासीलसमाहितं ॥९॥

(यश्चेद् विज्ञा प्रशंसन्ति अनुविच्य श्व श्वः।
अच्छिद्रवृत्तिं मेधाविनं प्रज्ञाशीलसमाहितम् ॥९॥)

२३०-नेक्खं जम्बोनदस्सेव को तं निन्दितुमरहति।
देवापि तं पसंसन्ति ब्रह्मुणापि पसंसितो ॥१०॥

(निष्कं जम्बूनदस्येव कस्तं निन्दितुमर्हति।
देवा अपि तं प्रशंसन्ति ब्रह्मणाऽपि प्रशंसितः ॥१०॥)

अनुवाद—अपने अपने (दिलमें) जान करके विज्ञ लोग अछिद्र वृत्ति (=दोषरहित स्वभाववाले) मेधावी, प्रज्ञा शील-संयुक्त जिस (पुरुष) की प्रशंसा करते हैं; जाम्बूनद (सुवर्ण) की अशर्फीके समान उसकी कौन निन्दा कर सकता है, देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं, ब्रह्मा द्वारा भी वह प्रशंसित होता है।

वेणुवन वज्जिय (भिक्षु)

२३१-कायप्पकोपं रक्खेय्य कायेन संवुतो सिया।
कायदुच्चरितं हित्वा कायेन सुचरितं चरे ॥११॥

(कायप्रकोपं रक्षेत् कायेन संवृतः स्यात्।
कायदुश्चरितं हित्वा कायेन सुचरितं चरेत् ॥११॥)

२३२-वचीपकोपं रक्खेय्य वाचाय संवुतो सिया।
वची दुच्चरितं हित्वा वचो सुचरितं चरे ॥१२॥

(वचःप्रकोपं रक्षेद् वाचा संवृतः स्यात्।
वचोदुश्चरितं हित्वा वाचा सुचरितं चरेत् ॥१२॥)

२३३—मनोप्पकोपं रक्खेय्य मनसा संवुतो सिया।
मनोदुच्चरितं हित्वा मनसा सुचरितं चरे ॥१३॥

(मनःप्रकोपं रक्षेत् मनसा संवृतः स्यात्।
मनोदुश्चरितं हित्वा मनसा सुचरितं चरेत् ॥१३॥)

२३४—कायेन संवुता धीरा अथो वाचाय संवुता।
मनसा संवुता धीरा ते वे सुपरिसंवुता ॥१४॥

(कायेन संवृता धीरा अथ वाचा संवृताः।
मनसा संवृता धीराः ते वै सुपरिसंवृताः ॥१४॥)

अनुवाद—कायाकी चंचलतासे रक्षा करे, कायासे संयत रहे कायिक दुश्चरितको छोड़ कायिक सुचरितका आचरण करे। वाणी की चंचलतासे रक्षा करे वाणीसे संयत रहे वाचिक दुश्चरितको छोड़ वाचिक सुचरितका आचरण करे। मनकी चंचलतासे रक्षा करे मनसे संयत रहे मानसिक दुश्चरितको छोड़ मानसिक सुचरितका आचरण करे।

१७—क्रोधवर्ग समाप्त

———

१८—मलवग्गो

जेतवन | गोघातक-पुत्र

२३५–पाण्डुपलासो'व दानिसि,
यमपुरिसापि च तं उपट्ठिता।
उय्योगमुखे च तिट्ठसि
पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति ॥१॥

(पाण्डुपलासमिवेदानीमसि यमपुरुषा अपि च त्वा उपस्थिताः।
उद्योगमुखे च तिष्ठसि पाथेयमपि च ते न विद्यते ॥१॥)

२३६–सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पं वायम पण्डितो भव।
निद्धन्तमलो अनङ्गणो दिब्बं अरियभूमिमेहिसि॥२॥

(स कुरु द्वीपमात्मनः क्षिप्रं व्यायच्छस्व पण्डितो भव।
निर्धूतमलोऽनंगणो दिव्यां आर्यभूमिं एष्यसि ॥२॥)

अनुवाद—पीले पत्ते के समान इस वक्त तू है, यमदूत तेरे पास खड़े हैं, तू प्रयाण के लिये तयार है और पाथेय तेरे पास कुछ नहीं है। सो तू अपने लिये द्वीप (=रक्षास्थान) बना, उद्योग कर, पंडित बन, मल प्रक्षालित कर, दोष-रहित बन आर्यों के दिव्य पदको पायेगा।

वेतवन गोघातक पुत्र

२३७—उपनीतवयो च दानिसि
सम्पयातोसि यमस्स सन्तिके ।
वासोपि ते नत्थि अन्तरा
पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति ॥३॥

(उपनीतवयाश्चेदानीमसि
सम्प्रयातोऽसि यमस्यान्तिके ।
वासोऽपि च ते नाऽस्त्यन्तरा
पाथेयमपि च ते न विद्यते ॥३॥)

२३८—सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पं वायम पण्डितो भव ।
निद्धन्तमलो अनङ्गणो न पुन जातिजरं उपेहिसि ॥४॥

(स कुरु द्वीपमात्मनः क्षिप्रं व्यायच्छस्व पण्डितो भव ।
निर्धूतमलोऽनंगणो न पुनर्जातिजरे उपेष्यसि ॥४॥)

अनुवाद—आयु तेरी समाप्त हो गई, यम के पास पहुँच चुका, बिचाव (स्थान) भी तेरा नहीं है (यात्रा के) मार्ग के लिये तेरे पास पाथेय भी नहीं। सो तू अपने लिये ।

वेतवन कोई ब्राह्मण

२३९—अनुपुब्बेन मेधावी थोकथोकं खणे खणे ।
कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो ॥५॥

(अनुपूर्वेण मेधावी स्तोकं स्तोकं क्षणे क्षणे ।
कर्मारो रजतस्येव निर्धमेत् मलमात्मनः ॥५॥)

अनुवाद—बुद्धिमान् (पुरुष) क्षण क्षण क्रमशः थोड़ा थोड़ा अपने मलको (वैसे ही) (जलावे), जैसा कि सोनार चाँदी के (मलको) जलाता है।

जेतवन तिस्स (थेर)

२४०—अयसा'व मलं समुट्ठितं
तदुट्ठाय तमेव खादति।
एवं अतिधोनचारिनं
सानि कम्मानि नयन्ति दुग्गतिं ॥६॥

(अयस इव मलं समुत्थित त (स्मा) दु
उत्थाय तदेव खादति।
एवं अतिधावनचारिणं स्वानि
कर्माणि नयन्ति दुर्गतिम् ॥६॥)

अनुवाद—लोहे से उत्पन्न मल (=मुर्चा) जैसे जिसी से उत्पन्न होता है, उसे ही खा डालता है, इसी प्रकार अति चंचल (पुरुष) के अपने ही कर्म उसे दुर्गति को ले जाते हैं।

जेतवन (लाल) उदायी (थेर)

२४१—असज्झायमला मन्ता अनुट्ठानमला घरा।
मलं वण्णस्स कोसज्जं पमादो रक्खतो मलं ॥७॥

(अस्वाध्यायमला मंत्रा अनुत्थानमला गृहा।
(मलं वर्णस्य कौसीद्यं, प्रमादो रक्षतो मलम् ॥७॥)

अनुवाद—स्वाध्याय (=स्वरपूर्वक पाठकी आवृत्ति) न करना (वेद-) मंत्रों का मल (=मुर्चा) है, (लीप पोत मरम्मत कर) न उठाना घरोंका मुर्चा है। शरीर का मुर्चा आलस्य है, असावधानी रक्षक का मुर्चा है।

राजगृह (वेणुवन) कोई कुलपुत्र

२४२—मलित्थिया दुच्चरितं मच्छेरं ददतो मलं।
मला वे पापका धम्मा अस्मिं लोके परम्हि च ॥८॥

(मलं स्त्रिया दुश्चरितं मात्सर्यं ददतो मलम्।
मलं वै पापका धर्मा अस्मिन् लोके परत्र च ॥८॥)

२४३—ततो मला मलतरं अविज्जा परमं मलं।
एतं मलं पहत्वान निम्मला होथ भिक्खवो ॥९॥

(ततो मलं मलतरं अविद्या परमं मलम्।
एतत् मलं प्रहाय निर्मला भवत भिक्षवः ॥९॥)

अनुवाद—स्त्रीका मल दुराचार है, कृपणता (=कंजूसी) दाता का मल है, पाप इस लोक और पर (लोक दोनों) में मल है। फिर मलों में भी सबसे बड़ा मल—महामल अविद्या है। हे भिक्षुओ! इस (अविद्या) मल को त्याग कर निर्मल बनो।

जेतवन (चुल्ल) सारी

२४४—सुजीवं अहिरीकेन काकसूरेन धंसिना।
पक्खन्दिना पगब्भेन संकिलिट्ठेन जीवितं ॥१०॥

(सुजीवितं अह्रीकेण काकशूरेण ध्वंसिना।
प्रस्कन्दिना प्रगल्भेन संक्लिष्टेन जीवितम् ॥१०॥)

अनुवाद—(पापाचार के प्रति) निर्लज्ज, कौए समान (स्वार्थ में) शूर, (परहित-)विनाशी पतित, बकवादी और मलिन (पुरुष) का जीवन सुख पूर्वक बीतता (देखा जाता) है।

जेतवन (चुल्ल) सारी

२४५—हिरीमता च दुज्जीवं निच्चं सुचिगवेसिना।
अलीनेनऽप्पगब्भेन सुद्धाजीवेन पस्सता ॥११॥

(ह्रीमता च दुर्जीवितं नित्य शुचिगवेषिणा ।
अलीनेनाऽप्रगल्भेन शुद्धाजीवेन पश्यता ॥११॥)

अनुवाद—(पापाचारके प्रति) लज्जावान्, नित्य ही पवित्रताका ख्याल रखने वाले, निरालस, अनुच्छृखल शुद्ध जीविका वाले सचेत (पुरुष) के जीवन को कठिनाई से बीतते देखते हैं ।

जेतवन पाँच सौ उपासक

२४६—यो पाणमतिपातेति मुसावदञ्च भासति ।
लोके अदिन्न आदियति परदारञ्च गच्छति ॥१२॥

(यः प्राणमतिपातयति मृषावादं च भाषते ।
लोकेऽदत्तं आदत्ते परादारांश्च गच्छति ॥१२॥)

२४७—सुरामेरयपानञ्च यो नरो अनुयुञ्जति ।
इधेवमेसो लोकस्मिं मूलं खनति अत्तनो ॥१३॥

(सुरामैरेयपानं च यो नरोऽनुयुनक्ति ।
इहैवमेष लोके मूलं खनत्यात्मनः ॥१३॥)

२४८—एवं भो पुरिस! जानाहि पापधम्मा असञ्ञता ।
मा तं लोभो अधम्मो च चिरं दुक्खाय रन्धयुं ॥१४॥

(एवं भो पुरुष ! जानीहि पापधर्माणोऽसयतान् ।
मा त्वां लोभोऽधर्मश्च चिरं दुःखाय रन्धेरन् ॥१४॥)

अनुवाद—जो हिंसा करता है, झूठ बोलता है, लोकमें चोरी करता है (=बिना दियेको लेता है), परस्त्रीगमन करता है ।

जो पुरुष मद्यपानमें लग्न होता है वह इस प्रकार इसी लोकमें अपनी जड़ खोदता है। हे पुरुष ! पापियों असंयमियोंके बारेमें ऐसा जान, और मत तुझे लोभ, अधर्म चिरकाल तक दुःखमें राँधे ।

जेतवन   तिस्स (बालक)

२४९—ददन्ति वे यथासद्धं यथापसादनं जनो ।
तत्थ यो मंकु भवति परेसं पानभोजने ।
न सो दिवा व रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति ॥१५॥

(ददाति वै यथाश्रद्धं यथाप्रसादनं जनः ।
तत्र यो मूको भवति परेषां पानभोजने ।
न स दिवा वा रात्रौ वा समाधिमधिगच्छति ॥१५॥)

२५०—यस्स च तं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं ।
स वे दिवा वा रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति ॥१६॥

(यस्य च तत् समुच्छिन्नं मूलघातं समुद्धतम् ।
स वै दिवा रात्रौ वा समाधिं अधिगच्छति ॥१६॥)

अनुवाद—लोग अपनी अपनी श्रद्धा और प्रसन्नताके अनुसार दान देते हैं वहाँ दूसरोंके खाने पीनेमें जो (असन्तोष के कारण) मूक होते हैं, वह रात दिन (कभी भी) समाधानको नहीं प्राप्त करता । (किन्तु) जिसका यह भाव मूलसे ही तरह उच्छिन्न हो गया, वह रात दिन (सर्वदा) समाधानको प्राप्त होता है ।

जेतवन पाच उपासक

२५१—नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो गहो ।
नत्थि मोहसमं जालं नत्थि तण्हासमा नदी ॥१७॥
(नास्ति रागसमोऽग्निः नाऽस्ति द्वेषसमो ग्राह ।
नाऽस्ति मोहसमं जाल, नाऽस्ति तृष्णा समा नदी ॥१७॥)

अनुवाद—राग के समान आग नहीं, द्वेषके समान ग्रह (=भूत, चुड़ैल) नहीं, मोह के समान जाल नहीं, तृष्णा के समान नदी नहीं।

भद्दियनगर (जातियावन) मेण्डक (श्रेष्ठी)

२५२—सुदस्सं वज्जमञ्ञेसं अत्तनो पन दुद्दसं ।
परेसं हि सो वज्जानि ओपुणाति यथाभुसं ।
अत्तनो पन छादेति कलिं 'व कितवा सठो ॥१८॥
(सुदर्शं वद्यमन्येषाम् आत्मनः पुनर्दुर्दशम् ।
परेषां हि स वद्यानि अवपुणाति यथातुषम् ।
आत्मनः पुन छादयति कलिमिव कितवात् शठ ॥१८॥)

अनुवाद—दूसरे का दोष देखना आसान है, किन्तु अपना (दोष) देखना कठिन है, वह (पुरुष) दूसरों के ही दोषों को भुसकी भांति उड़ाता फिरता है, किन्तु अपने (दोषों) को वैसे ही ढाँकता है, जैसे शठ जुआरी से पासे को।

जेतवन उज्झानसञ्ञी (थेर)

२५३—परवज्जानुपस्सिस्स निच्चं उज्झानसञ्ञिनो ।
आसवा तस्स वड्ढन्ति आरा स आसवक्खया ॥१९॥

(परवद्याऽनुदर्शिनो नित्यं अवध्यानसंज्ञिनः।
आस्रवास्तस्य वर्धन्ते आराद् स आस्रवक्षयात्॥१९॥)

अनुवाद—दूसरे के दोषों की खोज में रहने वाले, सदा हाय हाय करने वाले (पुरुष) के आस्रव (=चित्तमल) बढ़ते हैं, वह आस्रवों के विनाश से दूर हटा हुआ है।

कुशीनगर (सुभद्र परिव्राजक)

२५४—आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।
पपञ्चाभिरता पजा निप्पपञ्चा तथागता॥२०॥
(आकाशे च पदं नाऽस्ति श्रमणो नाऽस्ति बहिः।
प्रपञ्चाऽभिरताः प्रजा निष्प्रपञ्चास्तथागताः॥२०॥)

२५५—आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।
सङ्खारा सस्सता नत्थि, नत्थि बुद्धानमिञ्जितं॥२१॥
(आकाशे च पदं नाऽस्ति श्रमणो नाऽस्ति बहिः।
संस्काराः शाश्वता न सन्ति
नाऽस्ति बुद्धानामिञ्जितम्॥२१॥)

अनुवाद—आकाशमें पद (=चिह्न) नहीं, बाहरमें श्रमण (=संन्यासी) नहीं रहता। लोग प्रपंच में लगे रहते हैं, (किन्तु) तथागत (=बुद्ध) प्रपंचरहित होते हैं।

१८—मलवर्ग समाप्त

१९—धम्मट्ठवग्गो

जेतवन   विनिच्छयमहामत्त (=न्यायाधीश)

२५६—न तेन होति धम्मट्ठो येनत्थं सहसा नये ।
यो च अत्थं अनत्थञ्च उभो निच्छेय्य पण्डितो ॥१॥

(न तेन भवति धर्मस्थो येनार्थं सहसा नयेत् ।
यश्चाऽर्थं अनर्थं च उभौ निश्चिनुयात् पंडितः ॥१॥)

२५७—असाहसेन धम्मेन समेन नयती परे ।
धम्मस्स गुत्तो मेधावी धम्मट्ठो'ति पवुच्चति ॥२॥

(असाहसेन धर्मेण समेन नयते परान् ।
धर्मेण गुप्तो मेधावी धर्मस्थ इत्युच्यते ॥१॥)

अनुवाद—सहसा जो अर्थ (=कामकी वस्तु) को करता है, वह धर्ममें अवस्थित नहीं कहा जाता । पंडितको चाहिये कि वह अर्थ, अनर्थ दोनों को विचार (करके) करे ।

जेतवन — छब्बग्गिय (भिक्खु)

२५८—न तेन पण्डितो होति यावता बहु भासति ।
खेमी अवेरी अभयो पण्डितो'ति पवुच्चति ॥३॥

(न तावता पंडितो भवति यावता बहु भाषते ।
क्षेमी अवेरी अभयः पंडित इत्युच्यते ॥३॥)

अनुवाद—बहुत भाषण करने से पंडित नहीं होता । जो क्षेमवान्, अवैरी और अभय होता है वही पंडित कहा जाता है ।

जेतवन — एकुदान (थेर)

२५९—न तावता धम्मधरो यावता बहु भासति ।
यो च अप्पम्पि सुत्वान धम्मं कायेन पस्सति ।
स वे धम्मधरो होति यो धम्मं नप्पमज्जति ॥४॥

(न तावता धर्मधरो यावता बहु भाषते ।
यस्त्वल्पमपि श्रुत्वा धर्मं कायेन पश्यति ।
स वै धर्मधरो भवति यो धर्मं न प्रमाद्यति ॥४॥)

अनुवाद—बहुत बोलने से धर्मधर (=धार्मिक ग्रन्थों का ज्ञाता) नहीं होता जो थोड़ा भी सुनकर शरीर से धर्म का आचरण करता है और जो धर्म में असावधानी (=प्रमाद) नहीं करता, वही धर्मधर है ।

जेतवन — लकुण्टक भद्दिय (थेर)

२६०—न तेन थेरो होति येन'स्स पलितं सिरो ।
परिपक्को वयो तस्स मोघजिण्णो'ति वुच्चति ॥५॥

• न तेन वृद्धो भवति । (मनु-स्मृति ।)

(न तेन स्थविरो भवति येनाऽस्य पलित शिर ।
परिपक्वं वयस्तस्य मोघजीर्ण इत्युच्यते ॥५॥)

अनुवाद—शिर के (बाल के) पकने से थेर (=स्थविर, वृद्ध) नहीं होता, उसकी आयु परिपक्व हो गई (सही), (किन्तु) वह व्यर्थका वृद्ध कहा जाता है ।

जेतवन　　लकुण्टक भद्दिय (थेर

२६१—यम्हि सच्चञ्च धम्मो च अहिंसा सञ्ञमो दमो ।
स वे वन्तमलो धीरो थेरो 'ति पवुच्चति ॥६॥

(यस्मिन् सत्यं च धर्मश्चाहिंसा संयमो दमः ।
स वै वान्तमलो धीर स्थविर इत्युच्यते ॥६॥)

अनुवाद—जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, सयम और दम हैं, वही विगतमल, धीर और स्थविर कहा जाता है ।

जेतवन　　कितने ही भिक्षु

२६२—न वाक्करणमत्तेन वण्णपोक्खरताय वा ।
साधुरूपो नरो होति इस्सुको मच्छरी सठो ॥७॥

(न वाक्करणमात्रेण वर्णपुष्कलतया वा ।
साधुरूपो नरो भवति ईर्षुको मत्सरी शठः ॥७॥)

२६३—यस्स चेतं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं ।
स वन्तदोसो मेधावी साधुरूपो 'ति वुच्चति ॥८॥

(यस्य चैतत् समुच्छिन्नं मूलघातं समुद्धतम् ।
स वान्तदोषो मेधावी साधुरूप इत्युच्यते ॥८॥)

अनुवाद—(यदि वह ईर्ष्यालु, मत्सरी और शठ है), तो वक्ता होने मात्र से, सुन्दर रूप होने से आदमी साधु-रूप नहीं होता है। जिसके यह समूलसे बिल्कुल उच्छिन्न हो गये हैं, जो निर्दोष मेधावी है वही साधु-रूप कहा जाता है।

जेतवन हत्थक (भिक्षु)

२६४—न मुण्डकेन समणो अब्बतो अलिकं भणं।
इच्छालोभसमापन्नो समणो किं भविस्सति ॥९॥

(न मुंडकेन श्रमणो अव्रतोऽलीकं भणन्।
इच्छालोभसमापन्नः श्रमणः किं भविष्यति ॥९॥)

२६५—यो च समेति पापानि अणुं थूलानि सब्बसो।
समितत्ता हि पापानं समणो'ति पवुच्चति ॥१०॥

(यश्च शमयति पापानि अणूनि स्थूलानि सर्वशः।
शमितत्वाद्धि पापानां श्रमण इत्युच्यते ॥१०॥)

अनुवाद—जो व्रतरहित मिथ्याभाषी है वह मुण्डित होने मात्र से श्रमण नहीं होता। इच्छा लाभ से भरा (पुरुष) क्या श्रमण होगा? जो छोटे बड़े पापों को सर्वथा शमन करनेवाला है, पापोंके शमित होने के कारण वह समण (=श्रमण) कहा जाता है।

जेतवन कोई ब्राह्मण

२६६—न तेन भिक्खु (सो) होति यावता भिक्खते परे।
विस्सं धम्मं समादाय भिक्खु होति न तावता ॥११॥

(न तावता भिक्षु· [स] भवति यावता भिक्षते परान् ।
विश्वं धर्मं समादाय भिक्षुर्भवति न तावता ॥११॥)

अनुवाद—दूसरोंके पास जाकर भिक्षा माँगने मात्रसे भिक्षु नहीं होता, (जो) सारे (बुरे) धर्मों (=कामों) को ग्रहण करता है (वह) भिक्षु नहीं होता।

जेतवन कोई ब्राह्मण

२६७—यो'ध पुञ्ञञ्च पापञ्च वाहित्वा ब्रह्मचरियवा।
सङ्खाय लोके चरति स वे भिक्खू'ति वुच्चति ॥१२॥

(य इह पुण्यं च पापं च वाहयित्वा ब्रह्मचर्यवान् ।
संख्याय लोके चरति स वै भिक्षुरित्युच्यते ॥१२॥)

अनुवाद—जो यहाँ पुण्य और पापको छोड़ ब्रह्मचारी बन, ज्ञान के साथ लोक में विचरता है, वह भिक्षु कहा जाता है।

जेतवन तीर्थिक

२६८—न मोनेन मुनी होति मूळ्हरूपो अविद्दसु ।
यो च तुलं' व पग्गय्ह वरमादाय पण्डितो ॥१३॥

(न मौनेन मुनिर्भवति मूढरूपोऽविद्वान् ।
यश्च तुलामिव प्रगृह्य वरमादाय पंडित· ॥१३॥)

२६९—पापानि परिवज्जेति स मुनी तेन सो मुनि ।
यो मुनाति उभो लोके मुनी तेन पवुच्चति ॥१४॥

(पापानि परिवर्जयति स मुनिस्तेन स मुनि· ।
यो मनुत उभौ लोकौ मुनिस्तेन प्रोच्यते ॥१४॥)

अनुवाद—अविद्वान् और मूढ़समान (पुरुष, सिर्फ) मौन होनेसे मुनि नहीं होता, जो पंडित कि तुलाकी भाँति पकड़कर, उत्तम (तत्त्व) को ग्रहण कर, पापोंका परित्याग करता है वह मुनि है, और उस प्रकारसे मुनि होता है। चूँकि वह दोनों लोकोंका मनन करता है, इसलिये वह मुनि कहा जाता है।

जेतवन | अरिय बालिसिक

२७०—न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सब्बपाणानं अरियो'ति पवुच्चति ॥१५॥

(न तेनाऽऽर्यो भवति येन प्राणान् हिनस्ति।
अहिंसया सर्वप्राणानां आर्य इति प्रोच्यते ॥१५॥)

अनुवाद—प्राणियोंको हनन करनेसे (कोई) आर्य नहीं होता, सभी प्राणियोंकी हिंसा न करनेसे (उसे) आर्य कहा जाता है।

जेतवन | बहुतसे शील-आदि-युक्त भिक्षु

२७१—न सीलब्बतमत्तेन बाहुसच्चेन वा पन।
अथवा समाधिलाभेन विविच्चसयनेन वा ॥१६॥

(न शीलव्रतमात्रेण बाहुश्रुत्येन वा पुनः।
अथवा समाधिलाभेन विविच्य शयनेन वा ॥१६॥)

२७२—फुसामि नेक्खम्मसुखं अपुथुज्जनसेवितं।
भिक्खु! विस्सासमापादि अप्पत्तो आसवक्खयं ॥१७॥

(स्पृशामि नैष्कर्म्यसुखं अपृथग्जनसेवितम् ।
भिक्षो ! विश्वासं मा पादीः अप्राप्त आस्रवक्षयम् ॥१७॥)

अनुवाद- केवल शील और व्रतसे, बहुश्रुत होने (मात्र) से, या (केवल) समाधिलाभसे, या एकान्तमें शयन करनेसे, पृथग्जन (=अज्ञ] जिसे नहीं सेवन कर सकते, उस नैष्कर्म्य (=निर्वाण)-सुखका मैं अनुभव नहीं कर रहा हूँ! हे भिक्षुओ ! जब तक आस्रवों (=चित्तमलों) का क्षय न हो जाये, तब तक चुप न बैठे रहो ।

१९-धर्मस्थवर्ग समाप्त

२०—मग्गवग्गो

जेतवन — पाँच सौ भिक्षु

२७३—मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो सच्चानं चतुरो पदा।
विरागो सेट्ठो धम्मानं द्विपदानञ्च चक्खुमा ॥१॥

(मार्गाणामष्टांगिकः श्रेष्ठः सत्यानां चत्वारि पदानि।
विरागः श्रेष्ठो धर्माणां द्विपदानां च चक्षुष्मान् ॥१॥)

२७४—एसो'व मग्गो नत्थ'ञ्ञो दस्सनस्स विसुद्धिया।
एतं हि तुम्हे पटिपज्जथ मारस्सेतं पमोहनं ॥२॥

(एष एव मार्गो नाऽस्त्यन्यो दर्शनस्य विशुद्धये।
एतं हि यूयं प्रतिपद्यध्वं मारस्यैतत् प्रमोहनम् ॥२॥)

अनुवाद—मार्गों में अष्टांगिक मार्ग श्रेष्ठ है, सत्योंमें चार पद (=चार आर्यसत्य) श्रेष्ठ हैं, धर्मों में वैराग्य श्रेष्ठ है, द्विपदों (=मनुष्यों) में चक्षुमान (=ज्ञाननेत्रधारी बुद्ध) श्रेष्ठ है। दर्शन (=ज्ञान) की विशुद्धिके लिये यही मार्ग है, दूसरा नहीं। (भिक्षुओं!) इसीपर तुम आरूढ़ होओ, यही मारको मूर्छित करने वाला है।

जेतवन　　　　पाँच सौ भिक्षु

२७५–एतं हि तुम्हे पटिपन्ना दुक्खस्सन्तं करिस्सथ ।
अक्खातो वे मया मग्गो अञ्ञाय सल्लसन्थनं ॥३॥

(एतं हि यूयं प्रतिपन्ना दुःखस्यान्तं करिष्यथ ।
आख्यातो वै मया मार्ग आज्ञाय शल्य-संस्थानम् ॥३॥)

२७६–तुम्हेहि किच्चं आतप्पं अक्खातारो तथागता ।
पटिपन्ना पमोक्खन्ति झायिनो मारबन्धना ॥४॥

(युष्माभिः कार्यं आतप्यं आख्यातारस्तथागताः ।
प्रतिपन्नाः प्रमोक्ष्यन्ते ध्यायिनो मारबन्धनात् ॥४॥)

अनुवाद—इस (मार्ग) पर आरूढ हो तुम दुःखका अन्त कर सकोगे, (स्वयं) जानकर (राग आदिके विनाशमें) शल्य समान मार्गको मैंने उपदेश कर दिया । कार्य के लिए तुम्हें उद्योग करना है, तथागतों (=बुद्धों) का कार्य उपदेश कर देना है, (तदनुसार मार्गपर) आरूढ हो, ध्यान में रत पुरुष) मारके बन्धनसे मुक्त हो जायेंगे ।

जेतवन　　　　पाँच सौ भिक्षु

[अनित्य-लक्षणम्]

२७७–सब्बे सङ्खारा अनिच्चा 'ति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया ॥५॥

(सर्वे संस्कारा अनित्या इति यदा प्रज्ञया पश्यति ।
अथ निर्विन्दति दुःखानि, एष मार्गो विशुद्धये ॥५॥)

अनुवाद—सभी संस्कार (=कृत, निर्मित, वस्तु) अनित्य हैं; यह जब प्रज्ञासे देखता है, तब सभी दुःखोंसे निर्वेद (=विराग) को प्राप्त होता है, यही मार्ग (चित्त-) शुद्धिका है।

[दुःख-लक्षणम्]

२७८—सब्बे सङ्खारा दुक्खा 'ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया ॥६॥

(सर्वे संस्कारा दुःखा इति यदा प्रज्ञया पश्यति।
अथ निर्विन्दति दुःखानि, एष मार्गो विशुद्धये ॥६॥)

अनुवाद—सभी संस्कार (चीजें) दुःखमय हैं० ।

[अनात्म-लक्षणम्]

२७९—सब्बे धम्मा अनत्ता 'ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ॥७॥

(सर्वे धर्मा अनात्मान इति यदा प्रज्ञया पश्यति।
अथ निर्विन्दति दुःखानि एष मार्गो विशुद्धये ॥७॥)

अनुवाद—सभी धर्म (=पदार्थ) बिना आत्मा के हैं० ।

जेतवन (योगी) तिस्स (थेर)

२८०—उट्ठानकालम्हिअनुट्ठहानोयुवाबलीआलसियंउपेतो
संसन्नसङ्कप्पमनोकुसीतो पञ्ञायमग्गंअलसोनविन्दति॥८॥

(उत्थानकालेऽनुत्तिष्ठन् युवा बली आलस्यमुपेत. ।
संसन्न-संकल्प-मनाः कुसीदः
प्रज्ञया मार्गं अलसो न विन्दति ॥८॥)

अनुवाद—जो उट्ठान (=उद्योग) के समय उट्ठान न करनेवाला, युवा और बली होकर (भी) आलस्य से युक्त होता है, मनके संकल्पोंको जिसने गिरा दिया है, और जो कुसीदी (=दीर्घसूत्री) है, वह आलसी (पुरुष) प्रज्ञाके मार्गको नहीं प्राप्त कर सकता।

राजगृह (वेणुवन) (शूकर-प्रेत)

२८१—वाचानुरक्खी मनसा सुसंवुतो
कायेन च अकुसलं न कयिरा ।
एते तयो कम्मपथे विसोधये
आराधये मग्गमिसिप्पवेदितं ॥९॥

(वाचाऽनुरक्षी मनसा सुसंवृत.
कायेन चाऽकुशलं न कुर्यात् ।
एतान् त्रीन् कर्मपथान् विशोधयेत्,
आराधयेत् मार्गं ऋषिप्रवेदितम् ॥९॥)

अनुवाद—जो वाणी की रक्षा करनेवाला, मनसे संयमी रहे, तथ कायासे पाप न करे, इन (मन, वचन, काय) तीनों कर्म-पथोंकी शुद्धि करे, और ऋषि (=बुद्ध) के जतलाये धर्मका सेवन करे।

जेतवन पोठिल (थेर)

२८२—योगा वे जायती भूरि अयोगा भूरिसङ्खयो।
एतं द्वेधापथं ञत्वा भवाय विभवाय च।
तथ'त्तानं निवेसेय्य यथा भूरि पवड्ढति ॥१०॥

(योगाद् वै जायते भूरि अयोगाद् भूरिसंक्षयः।
एतं द्वैधापथं ज्ञात्वा भवाय विभवाय च।
तथाऽऽत्मानं निवेशयेद् यथा भूरि प्रवर्धते ॥१०॥)

अनुवाद—(मनके) योग (=संयोग) से भूरि (=ज्ञान) उत्पन्न होता है, अयोगसे भूरिका क्षय होता है। लाभ और विनाशके इन दो प्रकारके मार्गों को जानकर, अपनेको इस प्रकार रक्खे, जिससे कि भूरिकी वृद्धि होवे।

जेतवन कोई बूढ़े भिक्षु

२८३—वनं छिन्दथ मा रुक्खं वनतो जायती भयं।
छेत्वा वनञ्च वनथञ्च निब्बाना होथ भिक्खवो ॥११॥

(वनं छिन्त मा वृक्षं वनतो जायते भयम्।
छित्त्वा वनं च वनथं च निर्वाणा भवत भिक्षवः ॥११॥)

२८४—याव हि वनथो न छिज्जति
अणुमत्तोपि नरस्स नारिसु।
पटिबद्धमनो नु ताव सो वच्छो
खीरपको'व मातरि ॥१२॥

(यावद्धि वनथो न छिद्यतेऽणुमात्रोऽपि नरस्य नारीषु।
प्रतिबद्धमना नु तावत् स वत्सः क्षीरप इव मातरि ॥१२॥)

अनुवाद—वनको काटो, वृक्षको मत, वनसे भय उत्पन्न होता है, भिक्षुओ ! वन और झाड़ीको काटकर निर्वाणको प्राप्त हो जाओ। जबतक अणुमात्र भी स्त्रीमें पुरुषकी कामना अखंडित रहती है, तबतक दूध पीनेवाला बछड़ा जैसे मातामें आबद्ध रहता है, (वैसे ही वह पुरुष बंधा रहता है)।

जेतवन सुवण्णकार (थेर)

२८५-उच्छिन्द सिनेहमत्तनो कुमुदं सारदिकं'व पाणिना
सन्तिमग्गमेव ब्रूहय निब्बान सुगतेन देसितं ॥१३॥

(उच्छिन्धि स्नेहमात्मनः कुमुद शारदिकमिव पाणिना।
शान्तिमार्गमेव बृंहय निर्वाणं सुगतेन देशितम् ॥१३॥)

अनुवाद—हाथसे शरद् (ऋतु) के कुमुदकी भाँति, आत्मस्नेहको उच्छिन्न कर डालो, सुगत (=बुद्ध) द्वारा उपदिष्ट (इस) शान्तिमार्ग निर्वाणका आश्रय लो।

जेतवन (महाधनी वणिक्)

२८६-इध वस्सं वसिस्सामि इध हेमन्तगिम्हसु।
इति बालो विचिन्तेति अन्तरायं न बुज्झति ॥१४॥

(इह वर्षासु वसिष्यामि इह हेमन्तग्रीष्मयोः।
इति बालो विचिन्तयति, अन्तराय न बुध्यते ॥१४॥)

अनुवाद—यहाँ वर्षामें वसूँगा, यहाँ हेमन्त और ग्रीष्ममें (वसूँगा) —मूढ़ इस प्रकार सोचता है, (और) अन्तराय (=विघ्न) को नहीं बूझता।

जेतवन किसा गोतमी (थेरी)

२८७— पुत्तपसुसम्मत्तं ब्यासत्तमनसं नरं ।
सुत्तं गामं महोघो'व मच्चू आदाय गच्छति ॥१५॥

(तं पुत्र-पशु-सम्मत्तं व्यासक्तमनसं नरम् ।
सुप्तं ग्रामं महौघ इव मृत्युरादाय गच्छति ॥१५॥)

अनुवाद—सोये गाँवको जैसे बड़ी बाढ़ (बहा लेजाये) वैसेही पुत्र और पशुमें लिप्त आसक्त (-चित्त) पुरुषको मौत ले जाती है।

जेतवन पटाचारा (थेरी)

२८८—न सन्ति पुत्ता ताणाय न पिता नापि बन्धवा ।
अन्तकेनाधिपन्नस्स नत्थि ञातिसु ताणता ॥१६॥

(न सन्ति पुत्रास्त्राणाय न पिता नाऽपि बान्धवाः ।
अन्तकेनाऽधिपन्नस्य नाऽस्ति ज्ञातिषु त्राणता ॥१६॥)

अनुवाद—पुत्र रक्षा नहीं कर सकते न पिता न बन्धुलोग ही। जब मृत्यु पकड़ता है, तो जातिवाले रक्षक नहीं हो सकते।

२८९—एतमत्थवसं ञत्वा पण्डितो सीलसंवुतो ।
निब्बाणगमनं मग्गं खिप्पमेव विसोधये ॥१७॥

(एतमर्थवशं ज्ञात्वा पंडितः शीलसंवृतः ।
निर्वाणगमनं मार्गं क्षिप्रमेव विशोधयेत् ॥१७॥)

अनुवाद—इस बातको जानकर पंडित (नर) शीलवान् हो, निर्वाण की ओर लेजानेवाले मार्ग को शीघ्र ही साफ करे।

२०—मग्गवग्ग समाप्त

२१—पकिण्णकवग्गो

राजगृह (वेणुवन) गङ्गावरोहण

२९०—मत्तासुखपरिच्चागा पस्से चे विपुल सुखं।
चजे मत्तासुखं धीरो सम्पस्सं विपुलं सुख ॥१॥

(मात्रासुखपरित्यागात् पश्येच्चेद् विपुलं सुखम् ।
त्यजेन्मात्रासुख धीर सपश्यन् विपुलं सुखम् ॥१॥)

अनुवाद—थोड़ेसे सुखके परित्यागसे यदि बुद्धिमान् विपुल सुख (का लाभ) देखे, तो विपुल सुखका ख्याल करके थोड़ेसे सुखको छोड़ दे ।

जेतवन कोई पुरुष

२९१—परदुक्खूपदानेन यो अत्तनो सुखमिच्छति ।
वेरसंसग्गससट्ठो वेरा सो न पमुच्चति ॥२॥

(परदु खोपादानेन य आत्मन सुखमिच्छति ।
वैरसंसर्गसंसृष्टो वैरात् स न प्रमुच्यते ॥२॥)

अनुवाद—दूसरेको दुःख देकर जो अपने लिये सुख चाहता है, वैसे संसर्गमें पड़कर, वह वैरसे नहीं छूटता।

भद्दियनगर (जातियावन) भद्दिय (भिक्षु)

२९२—यं हि किच्चं तदपविद्धं अकिच्चं पन कयिरति।
उन्नळानं पमत्तानं तेसं वड्ढन्ति आसवा ॥३॥

(यद्धि कृत्यं तद् अपविद्धं अकृत्यं पुनः कृतम् ।
उन्नतानां प्रमत्तानां तेषां वर्धन्ते आस्रवाः ॥३॥)

२९३—येसञ्च सुसमारद्धा निच्चं कायगता सति।
अकिच्चं ते न सेवन्ति किच्चे सातच्चकारिनो।
सतानं सम्पजानानं अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥४॥

(येषाञ्च सुसमारब्धा नित्यं कायगता स्मृतिः ।
अकृत्यं ते न सेवन्ते कृत्ये सातत्यकारिणः ।
स्मरतां *सम्प्रजानानां अस्तं गच्छन्त्यास्रवाः ॥४॥)

अनुवाद—जो कर्तव्य है उसे (तो वह) छोड़ता है, जो अकर्तव्य है उसे करता है, ऐसे बढ़े मलवाले प्रमादियोंके आस्रव (= चित्तमल) बढ़ते हैं। जिन्हें कायामें (अशुचिता अनित्यता आदि दोष सम्बन्धी) स्मृति लगातार रहती है, वह अकर्तव्यको नहीं करते, और कर्तव्यको निरन्तर करनेवाले होते हैं। जो स्मृति, और सम्प्रजन्य (= सचेतपन) को रखनेवाले होते हैं, उनके आस्रव अस्त हो जाते हैं।

*सताम् ।

जेतवन लकुण्ठक भद्दिय (थेर)

२९४—मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च खत्तिये ।
रट्ठं सानुचरं हन्त्वा अनिघो याति ब्राह्मणो ॥५॥

(मातरं पितरं हत्वा राजानौ द्वौ च क्षत्रियौ ।
राष्ट्रं साऽनुचरं हत्वाऽनघो याति ब्राह्मण ॥५॥)

अनुवाद—माता (=तृष्णा), पिता (=अहंकार), दो क्षत्रिय राजाओं [=(१) आत्मा, ब्रह्म प्रकृति आदिकी नित्यता का सिद्धान्त, (२) मरणान्त जीवन मानना या जड़वाद], अनुचर (=राग) सहित राष्ट्र (=रूप, विज्ञान आदि संसार के उपादान पदार्थ), को मार कर ब्राह्मण (=ज्ञानी) निष्पाप होता है।

२९५—मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च सोत्थिये ।
वेय्यग्घपञ्चमं हन्त्वा अनिघो याति ब्राह्मणो ॥६॥

(मातरं पितरं हत्वा राजानौ द्वौ च श्रोत्रियौ ।
व्याघ्रपंचमं हत्वा नघो याति ब्राह्मणः ॥६॥)

अनुवाद—माता, पिता, दो श्रोत्रिय राजाओं [=(१) नित्यतावाद, (२) जड़वाद] और पाँचवे व्याघ्र (=पाँच ज्ञान के आवरणों) को मारकर, ब्राह्मण निष्पाप हो जाता है।

राजगृह (वेणुवन) (दारुसाकटिकपुत्त)

२९६—सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं बुद्धगता सति ॥७॥

(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गौतमश्रावकाः ।
येषां दिवा च रात्रौ च नित्यं बुद्धगता स्मृतिः ॥७॥)

२९७—सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं धम्मगता सति ॥८॥

(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गौतमश्रावकाः
येषां दिवा च रात्रौ च नित्यं धर्मगता स्मृतिः ॥८॥)

२९८—सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं सङ्घगता सति ॥९॥

(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गौतमश्रावकाः ।
येषां दिवा च रात्रौ च नित्यं संघगता स्मृतिः ॥९॥)

अनुवाद—जिनको दिन-रात बुद्ध-विषयक स्मृति बनी रहती है, वह गौतम (बुद्ध) के शिष्य खूब जागरूक रहते हैं । जिनको दिन-रात धर्म-विषयक स्मृति बनी रहती है । जिनको दिन-रात संघ-विषयक स्मृति बनी रहती है ।

२९९—सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं कायगता सति ॥१०॥

(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते० । ०नित्यं कायगता स्मृतिः ॥१०॥)

३००—सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च अहिंसाय रतो मनो ॥११॥

(सुप्रबुद्धं० । ०अहिंसायां रतं मनः ॥११॥)

२०१—सुप्पबुद्ध पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च भावनाय रतो मनो ॥१२॥
(सुप्रबुद्धं ०। ० भावनाया रत मन ॥१२॥)

अनुवाद—जिनको दिन-रात कायविषयक स्मृति बनी रहती है०। जिनका मन दिन-रात अहिंसा में रत रहता है •। जिनका मन दिन-रात भावना (=चिंता) में रन रहता है०।

वैशाली (महावन) वज्जिपुत्तक (भिक्षु)

२०२—दुप्पब्बज्ज दुरभिरम दुरावासा घरा दुखा ।
दुक्खोऽसमानसवासो दुक्खानुपतितद्धगू ।
तस्मा न च अद्धगू सिया न च दुक्खानुपतितो सिया॥१३॥
(दुष्प्रव्रज्या दुरभिराम दुरावासं गृहं दु.खम् ।
दु खोऽसमानसवासो दु खाऽनुपतितोऽध्वग. ।
तस्मान्न चाऽध्वग स्यान्न च दु.खाऽनुपतित स्यात् ॥१३॥)

अनुवाद—कष्टपूर्ण प्रव्रज्या (=सन्यास) में रत होना दुष्कर है, न रहने योग्य घर दु खद है, अपमान के साथ बसना दु खद है, मार्गका बटोही होना दु खद है, इसलिए मार्ग का बटोही न बने, न दु खमें पतित होवे।

जेतवन चित्त (गृहपति)

२०३—सद्धो सीलेन सम्पन्नो यसोभोगसमप्पितो ।
य य पदेस भजति तत्थ तत्थेव पूजितो ॥ १४ ॥

(श्रद्ध शीलेन सम्पन्नो यशोभोगसमर्पित ।
य य प्रदेश भजते तत्र तत्रैव पूजित ॥१४॥)

अनुवाद—श्रद्धावान्, शीलवान् यश और भोग से युक्त (पुरुष) जिस जिस स्थानमें जाता है वहीं वहीं पूजित होता है।

जेतवन (चुल्ल) सुभद्दा

३०४—दूरे सन्तो पकासेन्ति हिमवन्तो 'व पब्बता ।
असन्तेत्थ न दिस्सन्ति रत्तिंखित्ता यथा सरा ॥१५॥

(दूरे सन्त प्रकाशन्ते हिमवन्त इव पर्वता ।
असन्तोऽत्र न दृश्यन्ते रात्रिक्षिप्ता यथा शरा ॥१५॥)

अनुवाद—सन्त (जन) दूर होने पर भी हिमालय पर्वत (की) बर्फ चोटियों की भाँति प्रकाशते हैं और असन्त यहीं (पास में भी) होने पर रात में फेंके बाण की भाँति नहीं दिखाई देते।

जेतवन अकेला विहरनेवाले (थेर)

३०५—एकासनं एकसेय्यं एकोचरमतन्दितो ।
एको दमयमत्तानं वनन्ते रमितो सिया ॥१६॥

(एकासन एकशय्य एकश्चरन्नतन्द्रित ।
एको दमयन्नात्मानं वनान्ते रत स्यात् ॥१६॥)

अनुवाद—एकही आसन रखनेवाला एक शय्या रखनेवाला, अकेला विचरनेवाला (बन) आलस्यरहित हो अपनेको दमन कर अकेला ही वनान्त में रमण करे।

२१—प्रकीर्णकवर्ग समाप्त

२२—निरयवग्गो

जेतवन सुन्दरी (परिव्राजिका)

३०६—अभूतवादो निरय उपेति यो वापि
कत्वा 'न करोमी' ति चाह।
उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति
निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥ १ ॥

(अभूतवादी निरयमुपेति,
योवाऽपि कृत्वा 'न करोमी' ति चाह।
उभावपि तौ प्रेत्य समा भवतो
निहीनकर्माणौ मनुजौ परत्र ॥१॥

अनुवाद—असत्यवादी नरकमें जाते हैं, और वह भी जो कि करके 'नहीं किया'—कहते हैं। दोनों ही प्रकार के नीचकर्म करने वाले मनुष्य मरकर समान होते हैं।

राजगृह (वेणुवन) (पाप फलानुभवी प्राणी)

३०७—कासावकण्ठा बहवो पापधम्मा असञ्ञता।
पापा पापेहि कम्मेहि निरयन्ते उप्पज्जरे ॥२॥

(कायायकठा बहुव पापधर्मा असयता ।
पापा पापै कर्मभिर्निरय त उत्पद्यन्ते ॥२॥)

अनुवाद—कंठमें कापाय (-वस्त्र) डाले कितने ही पापी असंयमी हैं जो पापी कि (अपने) पाप कर्मोंसे नरकमें उत्पन्न होते हैं।

वैशाली (वग्गुमुदातीरवासी भिक्षु)

३०८—सेय्यो अयोगुळो भुत्तो तत्तो अग्गिसिखूपमो ।
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो रट्ठपिण्डं असञ्ञतो ॥३॥

(श्रेयान् अयोगोलो भुक्तस्तप्तोऽग्निशिखोपम ।
यच्चेद् भुञ्जीत दुःशीलो राष्ट्रपिंड असंयत ॥३॥)

अनुवाद—असंयमी दुराचारी हो राष्ट्र का पिंड [=देशका अन्न] खाने से अग्नि-शिखा के समान तप्त लोहे का गोला खाना उत्तम है।

जेतवन खेम (श्रेष्ठीपुत्र)

३१०—चत्तारि ठानानि नरो पमत्तो
आपज्जती परदारूपसेवी ।
अपुञ्ञलाभं न निकामसेय्यं निन्दं
ततीयं निरयं चतुत्थं ॥४॥

(चत्वारि स्थानानि नर प्रमत्त आपद्यते परदारोपसेवी ।
अपुण्यलाभं न निकामशेय्यां
निन्दां तृतीयां निरयं चतुर्थम् ॥४॥)

३१०—अपुञ्ञलाभो च गती च पापिका,
भीतस्स भीताय रती च थोकिका ।

राजा च दण्ड गरुकं पणेति
तस्मा नरो परदारं न सेवे ॥५॥

(अपुण्यलाभश्च गतिश्च पापिका,
भीतस्य भीतया रतिश्च स्तोकिका।
राजा च दंडं गुरुकं प्रणयति
तस्मात् नरो परदारान् न सेवेत ॥५॥)

अनुवाद—प्रमादी परस्त्रीगामी मनुष्य की चार गतियाँ हैं-अपुण्य-का लाभ, सुख से न निद्रा, तीसरे निन्दा, और चौथे नरक। (अथवा) अपुण्यलाभ, बुरी गति, भयभीत (पुरुष) की, भयभीत (स्त्री) से अत्यल्प रति, और राजा का भारी दंड देना, इसलिये मनुष्य को परस्त्रीगमन न करना चाहिये।

जेतवन　　　　(कटुभाषी भिक्षु)

३११-कुसो यथा दुग्गहीतो हत्थमेवानुकन्तति।
सामञ्ञं दुप्परामट्ठं निरयायुपकड्ढति ॥६॥

(कुशो यथा दुर्गृहीतो हस्तमेवाऽनुकृन्तति।
श्रामण्य दुष्परामृष्ट निरयायोपकर्षति ॥६॥)

अनुवाद—जैसे ठीक से न पकड़ने से कुश हाथ को ही छेदता है, (इसी प्रकार) श्रमणपन (=संन्यास) ठीक से ग्रहण न करने पर नरक में ले जाता है।

३१२-यं किञ्चि सिथिलं कम्मं सङ्किलिट्ठं च य वतं।
सङ्कस्सरं ब्रह्मचरियं न त होति महप्फलं ॥७॥

(यत् किञ्चित् शिथिलं कर्म संक्लिष्टं च यद् व्रतम् ।
संकुसुकं ब्रह्मचर्यं न तद् भवति महत्फलम् ॥७॥)

अनुवाद—जो कर्म कि शिथिल है जो व्रत कि क्लेश (=मल)-युक्त है और जो ब्रह्मचर्य अशुद्ध है वह महाफल (=दायक) नहीं होता।

३१३—कयिरञ्चे कयिराथेनं दळ्हमेनं परक्कमे ।
सिथिलो हि परिब्बाजो भिय्यो आकिरते रजं ॥८॥

(कुर्याच्चेत् कुर्वीतैतद् दृढमेतत् पराक्रमेत ।
शिथिलो हि परिव्राजको भूय आकिरते रजः ॥८॥)

अनुवाद—यदि (करने लायक कर्म) करना है तो उसे करे उसमें दृढ़ पराक्रम के साथ लग जावे, ढीला ढाला परिव्राजक (=संन्यासी) अधिक मल बिखेरता है।

जेतवन (कोई ईर्ष्यालु स्त्री)

३१४—अकतं दुक्कतं सेय्यो पच्छा तपति दुक्कतं ।
कतञ्च सुकतं सेय्यो यं कत्वा नानुतप्पति ॥९॥

(अकृतं दुष्कृतं श्रेयः पश्चात् तपति दुष्कृतम् ।
कृतं च सुकृतं श्रेयो यत् कृत्वा नानुतप्यते ॥९॥)

अनुवाद—दुष्कृत (=पाप) का न करना श्रेष्ठ है दुष्कृत करनेवाला पीछे अनुताप करता है, सुकृत का करना श्रेष्ठ है जिसको करके (मनुष्य) अनुताप नहीं करता।

जेतवन बहुत से भिक्षु

३१५-नगरं यथा पच्चन्तं गुत्तं सन्तरबाहिरं।
एवं गोपेथ अत्तानं खणो वे मा उपच्चगा।
खणातीता हि सोचन्ति निरयम्हि समप्पिता ॥१०॥

(नगरं यथा प्रत्यन्तं गुप्तं सान्तर्बाह्यम्।
एवं गोपयेदात्मानं क्षणं वै मा उपातिगा।
क्षणाऽतीता हि शोचन्ति निरये समर्पिता. ॥१०॥)

अनुवाद—जैसे सीमान्तका नगर भीतर बाहर से खूब रक्षित होता है, इसी प्रकार अपने को रक्षित रक्खे, क्षण भर भी न छोड़े, क्षण चूक जाने पर नरक में पड़कर शोक करना पड़ता है।

जेतवन (जैन साधु)

३१६-अलज्जिता ये लज्जन्ति लज्जिता ये न लज्जरे।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं ॥११॥

(अलज्जिता ये लज्जन्ते लज्जिता ये न लज्जन्ते।
मिथ्यादृष्टि समादाना सत्त्वागच्छन्ति दुर्गतिम् ॥११॥)

अनुवाद—अलज्जा (के काम) में जो लज्जा करते हैं और लज्जा (के काम] में जो लज्जा नहीं करते, वह झूठी धारणावाले प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

३१७-अभये च भयदस्सिनो भये च अभयदस्सिनो।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्तागच्छन्ति दुग्गतिं ॥१२॥

(अभये च भयदर्शिनो भये चाभयदर्शिनः ।
मिथ्यादृष्टिसमादानाः सत्त्वा गच्छन्ति दुर्गतिम् ॥१२॥

अनुवाद—भयरहित (काम) में जो भय देखते हैं और [भय कि
काम) में भय को नहीं देखते वह झूठी धारणा वाले ॥

जेतवन (तीर्थिक-शिष्य)

३१८—अवज्जे वज्जमतिनो वज्जे चावज्जदस्सिनो ।
मिच्छादिट्ठि० ॥१२॥
(अवद्ये वद्यमतयो वद्ये चावद्यदर्शिनः ।
मिथ्यादृष्टि० ॥१३॥)

अनुवाद—जो अदोष में दोषबुद्धि रखनेवाले हैं (और) दोष में अदोष बुद्धि रखनेवाले वह झूठी धारणावाले ।

३१९—वज्जञ्च वज्जतो ञत्वा अवज्जञ्च अवज्जतो ।
सम्मादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं ॥१४॥
(वर्द्य* च वद्यतो ज्ञात्वाऽवद्यं चावद्यतः ।
सम्यग्दृष्टिसमादानाः सत्त्वा गच्छन्ति सुगतिम् ॥१४॥)

अनुवाद—दोष को दोष जानकर और अदोष को अदोष जानकर ठीक धारणावाले प्राणी सुगति को प्राप्त होते हैं।

२२—निरयवग्ग समाप्त

---

*वर्द्य = वर्जित ।

२३ नागवग्गो

जेतवन आनन्द (थेर)

३२०—अहं नागो'व सङ्गामे चापतो पतितं सरं ।
अतिवाक्यं तितिक्खिस्सं दुस्सीलो हि बहुज्जनो ॥१॥

(अहं नाग इव संग्रामे चापत पतितं शरम् ।
अतिवाक्यं तितिक्षिष्ये, दुःशीला हि बहुजना. ॥१॥) .

अनुवाद—जैसे युद्ध में हाथी धनुष से गिरे शरको (सहन करता है
वैसेही मैं कटुवाक्यों को सहन करूँगा, (संसार में तो)
दुःशील आदमी ही अधिक हैं ।

३२१—दन्त नयन्ति समितिं दन्तं राजाभिरूहति ।
दन्तो सेट्ठोमनुस्सेसु यो'तिवाक्यं तितिक्खति ॥२॥

(दान्तं नयन्ति समितिं दान्त राजाऽभिरोहति ।
दान्त. श्रेष्ठो मनुष्येषु योऽतिवाक्य तितिक्षते ॥२॥)

(अभये च भयदर्शिनो भये चाऽभयदर्शिनः ।
मिथ्यादृष्टिसमादानाः सत्त्वा गच्छन्ति दुर्गतिम् ॥१२॥

अनुवाद—भयरहित (काम) में भी भय देखते हैं और [भय (के काम) में भय को नहीं देखते वह झूठी धारणा वाले० ॥

जेतवन (तीर्थिक-शिष्य)

३१८—अवज्जे वज्जमतिनो वज्जे चावज्जदस्सिनो ।
मिच्छादिट्ठि० ॥१२॥
(अवद्ये वद्यमतयो वद्ये चाऽवद्यदर्शिनः ।
मिथ्यादृष्टि० ॥१३॥)

अनुवाद—जो अदोष में दोषबुद्धि रखनेवाले हैं (और) दोष में अदोष दृष्टि रखनेवाले वह झूठी धारणावाले ।

३१९—वज्जञ्च वज्जतो ञत्वा अवज्जञ्च अवज्जतो ।
सम्मादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं ॥१४॥
(वर्ज्यं* च वर्ज्यतो ज्ञात्वाऽवर्ज्यं चावर्ज्यतः ।
सम्यग्दृष्टिसमादानाः सत्त्वा गच्छन्ति सुगतिम् ॥१४॥)

अनुवाद—दोष को दोष जानकर और अदोष को अदोष जानकर ठीक धारणावाले प्राणी सुगति को प्राप्त होते हैं।

२२—निरयवग्ग समाप्त

---

*वर्ज्य = वर्जनीय।

अनुवाद—दान्त [=शिक्षित] (हाथी) को युद्ध में ले जाते हैं, दान्त पर राजा चढ़ता है, मनुष्यों में भी दान्त (=सहन शील) श्रेष्ठ है, जो कि कटुवाक्यों को सहन करता है।

३२२—वरं अस्सतरा दन्ता आजानीया च सिन्धवा।
कुञ्जरा च महानागा अत्तदन्तो ततो वरं ॥३॥

(वरमश्वतरा दान्ता आजानीयाश्च सिन्धवः।
कुंजराश्च महानागा आत्मदान्तस्ततो वरम् ॥३॥)

अनुवाद—खच्चर, उत्तम सिन्धी घोड़े और महानाग हाथी दान्त =(शिक्षित) होने पर श्रेष्ठ हैं और अपने को दमन किया (पुरुष) उनसे भी श्रेष्ठ है।

जेतवन भूतपूर्व महावत भिक्षु

३२३—नहि एतेहि यानेहि गच्छेय्य अगतं दिसं।
यथाऽत्तना सुदन्तेन दन्तो दन्तेन गच्छति ॥४॥

(नहि एतैर्यानै गच्छेदगतां दिशम्।
यथाऽऽत्मना सुदान्तेन दान्तो दान्तेन गच्छति ॥४॥)

अनुवाद—इन (हाथी घोड़े आदि) यानों से बिना गई दिशा (निर्वाण की ओर नहीं जाया जा सकता) संयमी पुरुष अपने को दमन कर संयत (इन्द्रियों) के साथ (वहाँ) पहुँच सकता है।

जेतवन (परिजिण्ण ब्राह्मणपुत्त)

३२४—धनपालको नाम कुञ्जरो कटुकप्पभेदनो दुन्निवारयो
बद्धो कबलं न भुञ्जति सुमरति नागवनस्स कुञ्जरो ॥५

(धनपालको नाम कुजरो कटकप्रभेदनो दुर्निवार्य· ।
बद्ध. कवल न भुक्ते, स्मरति नागवन कुजर. ।।५।।)

अनुवाद—सेनाको तितर बितर करने वाला, दुर्धर्ष धनापलक नामक हाथी, (आज) बन्धनमें पड़ जाने पर कवल नहीं खाता, और (अपने) हाथियोंके जगलको स्मरण करता है।

जेतवन पसेनदी (कोसलराज)

३२५–मिद्धी यदा होति महग्घसो च
निद्दायिता सम्परिवत्तसायी ।
महावराहो' व निवापपुट्ठो
पुनप्पुन गब्भमुपेति मन्दो ।।६।।

(मृद्धो यदा भवति महाघसश्च निद्रायित सपरिवर्तशायी ।।
महावराह इव निवाप-पुष्ट पुन पुन गर्भमुपैति मन्द. ।।६।।

अनुवाद—जो (पुरुष) आलसी, बहुत खाने वाला, निद्रालु, करवट बदल बदल सोने वाला, तथा दाना देकर पले मोटे सुअर की भाँति, होता है, वह मन्द बार बार गर्भमें पड़ता है।

जेतवन (सामणेर)

३२६–इद पुरे चित्तमचारि चारिक
येनिच्छक यत्थ कामं यथासुख ।
तदज्ज' ह निग्गहेस्सामि योनिसो
हत्थिप्पभिन्नं विय अङ्कुसग्गहो ।।७।।

(इद पुरा चित्तमचरत् चारिकां
यथेच्छ यथाकाम यथासुखम् ।
तदद्याऽह निग्रहीष्यामि योनिशो
हस्तिन प्रभिन्नमिवाकुशग्राह ।।७।।)

अनुवाद—यह (मेरा) चित्त पहिले यथेच्छ=यथाकाम, जैसे सुख मालूम हुआ वैसे विचरनेवाला था; सो आज महावत जैसे मतवाले हाथीको (पकड़ता है, वैसे) मैं उसे अच्छे पकड़ूँगा।

जेतवन कोसलराजका पावेय्यक नामक हाथी

३२७—अप्पमादरता होथ सचित्तमनुरक्खथ ।
दुग्गा उद्धरथ'त्तानं पङ्के सन्नो'व कुञ्जरो ॥८॥
(अप्रमादरता भवत स्वचित्तमनुरक्षत ।
दुर्गादुद्धरताऽऽत्मानं पङ्के सक्त इव कुञ्जरः ॥८॥)

अनुवाद—अप्रमाद (सावधानता) में रत होओ, अपने मनकी रक्षा करो, पङ्कमें फँसे हाथीकी तरह (राग आदिसे कैसे) अपने को ऊपर निकालो।

पारिलेय्यक बहुतसे भिक्षु

३२८—सचे लभेथ निपकं सहायं
सद्धिं चरं साधुविहारिधीरं ।
अभिभुय्य सब्बानि परिस्सयानि
चरेय्य तेन'त्तमनो सतीमा ॥९॥
(स चेत् लभेत निपकं सहायं
सार्धं चरन्तं साधुविहारिणं धीरम् ।
अभिभूय सर्वान् परिश्रयान्
चरेत् तेनाऽऽत्तमनाः स्मृतिमान् ॥९॥)

अनुवाद—यदि परिपक्व (—बुद्धि) बुद्धिमान् साथमें विहरनेवाला (=शिष्य) सहचर मित्र मिले, तो सभी परिश्रयों (=विघ्नों) को हटाकर सचेत प्रसन्नचित्त हो उसके साथ विहार करे।

३२९–नो चे लभेथ निपक सहाय
सद्धिं चरं साधुविहारिधीरं।
राजा 'व रट्ठ विजितं पहाय
एको चरे मातङ्ग'रञ्ञेव नागो ॥१०॥

(न चेत् लभेत निपक्व सहायं
सार्द्धं चरन्तं साधुविहारिण धीरम्।
राजेव राष्ट्र विजित प्रहाय,
एकश्चेत् मातगोऽरण्य इव नाग ॥१०॥

अनुवाद—यदि परिपक्व, बुद्धिमान् साथमें विहरनेवाला सहचर मित्र न मिले, तो राजा की भाँति पराजित राष्ट्र को छोड़ गजराज हाथी की तरह अकेला विचरे।

३३०–एकस्स चरित सेय्यो नत्थि बाले सहायिता।
एको चरे न च पापानि कयिरा
अप्पोस्सुक्को मातङ्ग 'रञ्ञे'व नागो ॥११॥

(एकस्य चरितं श्रेयो नास्ति बाले सहायता।
एकश्चरेत् न च पापानि कुर्याद्
अल्पोत्सुको मातगोऽरण्य इव नागः ॥११॥)

अनुवाद—अकेला विचरना उत्तम है किन्तु मूढ़की मित्रता अच्छी नहीं, मातंगराज हाथी की भाँति अनासक्त हो अकेला विचरे और पाप न करे।

हिमवन्त्-प्रदेश मार

३३१—अत्थम्हि जातम्हि सुखा सहाया
तुट्ठी सुखा या इतरीतरेन ।
पुञ्ञं सुखं जीवितसंखयम्हि
सब्बस्स दुक्खस्स सुखं पहाणं ॥१२॥

(अर्थे जाते सुखाः सहायाः, तुष्टिः सुखा येतरेतरेण ।
पुण्यं सुखं जीवितसंक्षये
सर्वस्य दुःखस्य सुखं प्रहाणम् ॥१२॥)

अनुवाद—काम पड़ने पर मित्र सुखद (लगते हैं) परस्पर सन्तोष हो (यह भी) सुखद (कर) है जीवन के क्षय होने पर (किया हुआ) पुण्य सुखद (होता है), सारे दुःखों का विनाश (=अर्हत् होना) (यह सबसे अधिक) सुखद है।

३३२—सुखा मत्तेय्यता लोके अथो पेत्तेय्यता सुखा ।
सुखा सामञ्ञता लोके अथो ब्रह्मञ्ञता सुखा ॥१३॥

(सुखा मात्रीयता लोकेऽथ पित्रीयता सुखा ।
सुखा श्रमणता लोकेऽथ ब्राह्मणता सुखा ॥१३॥)

अनुवाद—लोक में माता की सेवा सुखकर है, और पिता की सेवा (भी) सुखकर है, श्रमणभाव (=संन्यास) लोकमें सुखकर है, और ब्राह्मणपन (=निष्पाप होना) सुखकर है।

३३३–सुखं याव जरा सीलं सुखा सद्धा पतिट्ठिता।
सुखो पञ्ञाय पटिलाभो पापानं अकरणं सुखं ॥१४॥

(सुखं यावद् जरां शीलं सुखा श्रद्धा प्रतिष्ठिता।
सुख प्रज्ञाया प्रतिलाभ. पापानां अकरणं सुखम् ॥१४॥)

अनुवाद—बुढ़ापे तक आचार का पालन करना सुखकर है, और स्थिर श्रद्धा (सत्य में विश्वास) सुखकर है, प्रज्ञाका लाभ सुखकर है, और पापों का न करना सुखकर है।

२३—नागवर्ग समाप्त

२४ तण्हावग्गो

जेतवन

कपिलमच्छ

३३४—मनुजस्स पमत्तचारिनो तण्हा वड्ढति मालुवा विय।
सो पलवती हुराहुरं फलमिच्छं 'व वनस्मिं वानरो ॥१॥

(मनुजस्य प्रमत्तचारिणः तृष्णा वर्धते मालुवेव ।
स प्लवतेऽहरहः फलमिच्छन् इव वने वानरः ॥१॥)

अनुवाद—प्रमत्त होकर आचरण करनेवाले मनुष्य की तृष्णा मालुवा (लता) की भाँति बढ़ती है, वनमें वानर की भाँति फल की इच्छा करते दिनोंदिन वह भटकता रहता है।

३३५—यं एसा सहती जम्मि तण्हा लोके विसत्तिका।
सोका तस्स पवड्ढन्ति अभिवट्ठं 'व बीरणं ॥२॥

(यं एषा साहयति जाल्मिनी तृष्णा लोके विषात्मिका ।
शोकास्तस्य प्रवर्धन्तेऽभिवर्धमानं इव बीरणम् ॥२॥)

अनुवाद—यह (बराबर) बढ़नेवाली विषभरी तृष्णा जिसको पकड़ती है, बढ़नेवाले बीरण (= चराई बढ़ानेवाला एक तृण) की भाँति उसके शोक बढ़ते हैं।

३३६—यो चेतं सहती जम्मिं तण्हं लोके दुरच्चयं ।
सोका तम्हा पपतन्ति उदबिन्दू 'व पोक्खरा ॥२॥
(यश्चैतां साहयति जन्मिनी तृष्णां लोके दुरत्ययाम् ।
शोका तस्मात् प्रपतन्त्युदबिन्दुरिव पुष्करात् ॥३॥)

अनुवाद—इस बराबर जनमते रहनेवाली, दुस्त्याज्य तृष्णा को जो लोक में परास्त करता है, उससे शोक (वैसेही) गिर जाते हैं, जैसे कमल (-पत्र) जल का बिन्दु ।

३३७—तं वो वदामि भद्दं वो यावन्तेत्थ समागता ।
तण्हाय मूलं खणथ उसीरत्थो 'व बीरणं ॥४॥
(तद् वो वदामि भद्रंवो यावन्त इह समागताः ।
तृष्णाया मूलं खनतोशीरार्थीव वीरणम् ॥४॥

अनुवाद—इसलिये तुम्हें कहता हूँ, जितने यहाँ आये हो, तुम्हारा सबका मंगल हो, जैसे खसके लिये लोग उषीरको खोदते हैं, वैसे ही तुम तृष्णाकी जड़को खोदो ।

जेतवन गृथ सूकर-पोतिक

३३८—यथापि मूले अनुपद्दवे दळ्हे
छिन्नोपि रुक्खो पुनरेव रूहति ।
एवम्पि तण्हानुसये अनूहते
निब्बत्तति दुक्खमिदं पुनप्पुनं ॥५॥
(यथाऽपि मूलेऽनुपद्रवे दृढेछिन्नोऽपि वृक्षः पुनरेव रोहति ।
एवमपि तृष्णाऽनुशयेऽनिहते निर्वर्तते दुःखमिदं पुनः पुनः ॥५॥)

अनुवाद—जैसे जड़के दृढ़ और न कटी होने पर कटा हुआ भी वृक्ष फिर उग आता है इसी प्रकार तृष्णारूपी अनुशय (=मल) के न नष्ट होनेपर यह दुःख फिर फिर पैदा होता।

३३९—यस्स छत्तिसती सोता मनापस्सवना भुसा।
वाहा वहन्ति दुद्दिट्ठिं सङ्कप्पा रागनिस्सिता ॥६॥
(यस्य षट्त्रिंशत् स्रोतांसि मनापस्रवणानि भृशानि।
वाहा वहन्ति दुर्दृष्टिं संकल्पा रागनिःसृता ॥६॥)

अनुवाद—जिसके छत्तीस स्रोत* मन को अच्छी लगनेवाली (चीजों) को ही जानेवाले हों (उसके लिए) रागयुक्त संकल्प रूपी वाहन बुरे आशयों को वहन करते हैं।

३४०—सवन्ति सब्बधि सोता लता उब्भिज्ज तिट्ठति।
तञ्च दिस्वा लतं जातं मूलं पञ्ञाय छिन्दथ ॥७॥
(स्रवन्ति सर्वतः स्रोतांसि लता उद्भिद्य तिष्ठति।
तां च दृष्ट्वा लतां जातां मूलं प्रज्ञया छिन्दत ॥७॥)

अनुवाद—(यह) स्रोत चारों ओर बहते हैं (जिसके कारण) (तृष्णा रूपी) लता अंकुरित रहती है, उस

---

* आँख, कान नाक, जीभ काया (=चर्म) मन इन छै के रूप शब्द, गंध, रस, स्पर्श, धर्म (=मनका विषय) छओंका विज्ञान (=आँखसे होने वाला ज्ञान) और कान, नाक, जीभ काया तथा मनके विज्ञान, इन्हीं भीतरी और बाहरी भेद से छत्तीस स्रोत होते

उत्पन्न हुई लता को जानकर, प्रज्ञा से (उसकी) जड़को काटो।

३४१–सरितानि सिनेहितानि च
सोमनस्सानि भवन्ति जन्तुनो
ते वे सोतसिता सुखेसिनो
ते वे जाति-जरूपगा नरा ॥८॥

(सरित स्निग्धाश्च सौमनस्या भवन्ति जन्तोः।
ते स्रोत सृता॰ सुखैषिणस्ते वै जातिजरोपगा नरा॰ ॥८॥)

अनुवाद—(यह) (तृष्णा रूपी) नदियाँ स्निग्ध और प्राणियों के चित्तको खुश रखनेवाली होती हैं, (जिनके) नर स्रोत में बंधे, सुख की खोज करते, जन्म और जरा के फेर में पड़ते हैं।

३४२–तसिणाय पुरक्खता पजा
परिसप्पन्ति ससो 'व बाधितो।
सञ्ञोजनसङ्ग सत्तका
दुक्खमुपेन्ति पुनप्पुन चिराय ॥९॥

(तृष्णया पुरस्कृताः प्रजा रिसर्पन्ति शश इव बद्धः।
सयोजनसगसक्तका दु खमुपयन्ति पुन पुन॰ चिराय ॥९॥)

अनुवाद—तृष्णाके पीछे पड़े प्राणी, बंधे खरगोश की भाँति चक्कर काटते हैं, सयोजनों (=मनके बंधनों) में फँसे (जन पुन पुन चिरकाल तक दु ख को पाते हैं।

अनुवाद—जैसे जड़के दृढ़ और न नष्ट होने पर कटा हुआ भी वृक्ष फिर उग आता है इसी प्रकार तृष्णारूपी अनुशय (=मल) के न नष्ट होनेपर यह दुःख फिर फिर पैदा होता।

३३९—यस्स छत्तिंसती सोता मनापस्सवना भुसा।
वाहा वहन्ति दुद्दिट्ठिं सङ्कप्पा रागनिस्सिता ॥६॥
(यस्य षट्त्रिंशत् स्रोतांसि मनापश्रवणानि भूयासुः।
वाहा वहन्ति दुर्दृष्टिं संकल्पा रागनिःसृता ॥६॥)

अनुवाद—जिसके छत्तीस स्रोत● मन को अच्छी लगनेवाली (चीजों) को ही जानेवाले हों (उसके लिए) रागनिश्रित संकल्प रूपी वाहन बुरी धारणाओं को वहन करते हैं।

३४०—सवन्ति सब्बधि सोता लता उब्भिज्ज तिट्ठति।
तञ्च दिस्वा लतं जातं मूलं पञ्ञाय छिन्दथ ॥७॥
(स्रवन्ति सर्वतः स्रोतांसि लता उद्भिद्य तिष्ठति।
तां च दृष्ट्वा लतां जातां मूलं प्रज्ञया छिन्दत ॥७॥)

अनुवाद—(ये) स्रोत चारों ओर बहते हैं (जिनके कारण) (तृष्णा रूपी) लता अंकुरित रहती है, उस

● आँख कान, नाक, जीभ काया (=चर्म) मन, रूप गन्ध शब्द रस, स्पर्श, धर्म (=मनका विषय) आँखका विज्ञान (=आँखसे होने वाला ज्ञान), और कान नाक, जीभ, काया तथा मनके विज्ञान; यही भीतरी और बाहरी भेद से छत्तीस स्रोत होते हैं।

उत्पन्न हुई लता को जानकर, प्रज्ञा से (उसकी) जड़को काटो ।

३४१-सरितानि सिनेहितानि च
सोमनस्सानि भवन्ति जन्तुनो
ते वे सोतसिता सुखेसिनो
ते वे जाति-जरूपगा नरा ॥८॥

(सरित स्निग्धाश्च सौमनस्या भवन्ति जन्तोः ।
ते स्रोत सृता सुखैषिणस्ते वै जातिजरोपगा नराः ॥८॥)

अनुवाद—(यह) (तृष्णा रूपी) नदियाँ स्निग्ध और प्राणियों के चित्तको खुश रखनेवाली होती है, (जिनके) नर स्रोत में बधे, सुख की खोज करते, जन्म और जरा के फेर में पड़ते हैं ।

३४२-तसिणाय पुरक्खता पजा
परिसप्पन्ति ससो 'व बाधितो ।
सञ्ञोजनसङ्ग सत्तका
दुक्खमुपेन्ति पुनप्पुन चिराय ॥९॥

(तृष्णया पुरस्कृता प्रजा रिसर्पन्ति शश इव बद्धः ।
सयोजनसगसक्तका दु खमुपयन्ति पुन. पुन. चिराय । ९॥)

अनुवाद—तृष्णाके पीछे पड़े प्राणी, बधे खरगोश की भाँति चक्कर काटते हैं, सयोजनों (=मनके बधनों) में फँसे (जन पुन पुन चिरकाल तक दु ख को पाते हैं ।

३४३–तसिणाय पुरक्खता पजा
परिसप्पन्ति ससो'व बाधितो।
तस्मा तसिनं विनोदये भिक्खू
आकङ्खी विरागमत्तनो ॥१०॥

तृष्णया पुरस्कृताः प्रजाः
परिसर्पन्ति शश इव बद्धः।
तस्मात् तृष्णां विनोदयेद्
भिक्षुराकांक्षी विरागमात्मनः ॥१०॥

अनुवाद—तृष्णा के पीछे पड़े प्राणी बँधे खरगोश की भाँति चक्कर काटते हैं; इसलिये भिक्षु को चाहिये कि वह अपने वैराग्यकी इच्छा रख तृष्णा को दूर करे।

वेळुवन विब्भन्तक (भिक्षु)

३४४–यो निब्बनथो वनाधिमुत्तो
वनमुत्तो वनमेव धावति।
तं पुग्गलमेव पस्सथ मुत्तो बन्धनमेव धावति ॥११॥

(यो निर्वाणार्थी वनाधिमुक्तो
वनमुक्तो वनमेव धावति।
तं पुद्गलमेव पश्यत मुक्तो
बन्धनमेव धावति ॥११॥)

अनुवाद—जो निर्वाणकी इच्छा वाला (पुरुष) वन (तृष्णा) से मुक्त हो, वन से मुक्त हो फिर वन (=तृष्णा) ही की ओर दौड़ता है, उस व्यक्ति को (देखो ही) उसको

जैसे कोई (बन्धन) से मुक्त (पुरुष) फिर बन्धन ही की ओर दौड़े।

जेतवन बन्धनागार

३४५—न तं दल्हं बन्धनमाहु धीरा
यदायसं दारुजं बब्बजञ्च।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु
पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा ॥१२॥

(न तद् दृढं बन्धनमाहुर्धीरा
यद् आयसं दारुजं पर्वजं च।
सारवद्-रक्ता मणिकुडलेषु
पुत्रेषु दारेषु च याऽपेक्षा ॥१२॥)

अनुवाद—(यह) जो लोहे लकड़ी या रस्सीका बन्धन है, उसे बुद्धि-मान जन) दृढ़ बन्धन नहीं कहते, (वस्तुतः दृढ़ बन्धन है जो यह) धन (=सारवत्) में रक्त होना, या मणि, कुण्डल, पुत्र स्त्रीमें इच्छाका होना है।

४६—एतं दल्हं बन्धनमाहु धीरा
ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुञ्चं।
एतम्पि छेत्वान परिब्बजन्ति
अनपेक्खिनो कामसुखं पहाय ॥१३॥

(एतद् दृढं बन्धनमाहुर्धीरा
अपहारि शिथिलं दुष्प्रमोचम्।
एतदपि छित्त्वा परिव्रजन्त्य-
-नपेक्षिणः कामसुखं प्रहाय ॥१३॥)

अनुवाद—वितर्कके शान्त करनेमें जो रत है सचेत रह (जो) अशुभ (दुनियाके अन्धेरे पहलू) की भी सदा भावना करता है। वह मारके बन्धनको छिन्न करेगा, विनाश करेगा।

जेतवन मार

३५१–निट्ठङ्गतो असन्तासी वीततण्हो अनङ्गणो।
उच्छिन्दि भवसल्लानि अन्तिमो'यं समुस्सयो ॥१८॥

(निष्ठांगतोऽसंत्रासी वीततृष्णोऽनंगण।
उत्सृज्य भवशल्यानि अन्तिमोऽयं समुच्छ्रय ॥१८॥)

अनुवाद—जिसके (पाप-पुण्य) समाप्त हो गये, जो त्रास-उत्पादक नहीं है, जो तृष्णारहित और मलरहित है, वह भवके शल्यों को उखाड़ेगा, यह उसका अंतिम देह है।

३५२–वीततण्हो अनादानो निरुत्तिपदकोविदो।
अक्खरानं सन्निपातं जञ्ञा पुब्बापरानि च।
स वे अन्तिमसारीरो महापञ्ञो'ति वुच्चति ॥१९॥

(वीततृष्णोऽनादानो निरुक्तिपदकोविदः।
अक्षराणां सन्निपातं जानाति पूर्वापराणि च
स वै अन्तिमशारीरो महाप्राज्ञ इत्युच्यते ॥१९॥)

अनुवाद—जो तृष्णारहित परिग्रहरहित भाषा और अर्थका जानकार है और (जो) अक्षरोंके पहिले पीछे रखनेको जानता है वह निश्चय ही अन्तिम शरीर वाला तथा महाप्राज्ञ कहा जाता है

गाय से वाराणसीके रास्तेमें उपक (आजीवक)

३५३–सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि
सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो
सब्बञ्जहो तण्हक्खये विमुत्तो
सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्यं ॥२०॥

(सर्वाभिभूः सर्वविदहमस्मि सर्वेषु धर्मेष्वनुपलिप्तः ।
सर्वजहः तृष्णाक्षये विमुक्तः
स्वयमभिज्ञाय कमुद्दिशेयम् ॥२०॥)

अनुवाद—मैं (राग आदि) सभीका परास्त करनेवाला हूं, (दुःखसे मुक्ति पानेकी) सभी (बातों) का जानकार हूं, सभी धर्मों (=पदार्थों)में अलिप्त हूं, सर्वत्यागी, तृष्णाके नाशसे मुक्त हूँ, (विमल ज्ञानको) अपने ही जानकर (मैं अब) किसको अपना (गुरु) बतलाऊँ ?

जेतवन सक्क देवराज

३५४–सब्बदानं धम्मदानं जिनाति
सब्बं रसं धम्मरसो जिनाति ।
सब्बं रतिं धम्मरती जिनाति
तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति ॥२१॥

(सर्वदानं धर्मदानं जयति
सर्वं रसं धर्मरसो जयति ।
सर्वां रतिं धर्मरतिर्जयति
तृष्णाक्षयः सर्वदुःखं जयति ॥२१॥)

अनुवाद—धर्म का दान सारे दानों से बढ़कर है, धर्मरस सारे रसों से प्रबल है, धर्म में रति सब रतियों से बढ़कर है, तृष्णा का विनाश सारे दुःखों को जीत लेता है।

जेतवन (अपुत्रक श्रेष्ठी)

३५५–हनन्ति भोगा दुम्मेधं नो चे पारगवेसिनो।
भोगतण्हाय दुम्मेधो हन्ति अञ्ञे'व अत्तनं ॥२२॥
(घ्नन्ति भोगा दुर्मेधसं न चेत् पारगवेषिणः।
भोगतृष्णया दुर्मेधा हन्त्यन्यानिवात्मानम् ॥२२॥)

अनुवाद—(संसार को) पार होने की कोशिश न करनेवाले दुर्बुद्धि (पुरुष) को भोग नष्ट करते हैं भोगों की तृष्णा में पड़कर (वह) दुर्बुद्धि पराये की भाँति अपने ही को हनन करता है।

पाण्डुकम्बलशिला (देवता) अङ्कुर

३५६–तिणदोसानि खेत्तानि रागदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतरागेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥२३॥
(तृणदोषाणि क्षेत्राणि रागदोषेयं प्रजा।
तस्माद्धि वीतरागेषु दत्तं भवति महाफलम् ॥२३॥)

अनुवाद—खेतों का दोष तृण है इस प्रजा (=मनुष्यों) का दोष राग है इसलिये (राग) वीतराग (पुरुष) को देने में महाफलप्रद होता है।

३५७–तिणदोसानि खेत्तानि दोसदोसा अयं पजा॥
तस्मा हि वीतदोसेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥२४॥
(तृणदोषाणि क्षेत्राणि द्वेषदोषेयं प्रजा।
तस्माद्धि वीतद्वेषेषु दत्तं भवति महाफलम् ॥२५॥)

अनुवाद—खेतों का दोष तृण है, इस प्रजा का दोष द्वेष है, इसलिये वीतद्वेष (=द्वेषरहित) को देने में महाफल होता है।

३५८-तिणदोसानि खेत्तानि मोहदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतमोहेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥२५॥

(तृणदोषाणि क्षेत्राणि मोहदोषेयं प्रजा।
तस्माद्धि वीतमोहेषु दत्तं भवति महाफलम् ॥२५॥)

अनुवाद—खेतों का दोष तृण है, इस प्रजा का दोष मोह है इसलिये वीतमोह (=मोहरहित) को देने में महाफल होता है।

३५९-तिणदोसानि खेत्तानि इच्छादोसो अयं पजा।
तस्मा हि विगतिच्छेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥२६॥

(तृणदोषाणि क्षेत्राणि, इच्छादोषेयं प्रजा।
तस्माद्धि विगतेच्छेषु दत्तं भवति महाफलम् ॥२६॥)

अनुवाद—खेतों का दोष तृण है, इस प्रजा का दोष इच्छा है, इसलिये विगतेच्छ (=इच्छारहित) को देने में महाफल होता है।

२४—तृष्णावर्ग समाप्त

———

२५—भिक्खुवग्गो

जेतवन — पाँच भिक्षु

३६०—चक्खुना संवरो साधु साधु सोतेन संवरो ।
घाणेन संवरो साधु साधु जिव्हाय संवरो ॥१॥

(चक्षुषा संवरः साधुः साधुः श्रोत्रेण संवरः ।
घ्राणेन संवरः साधुः साधुः जिह्वया संवरः ॥१॥)

अनुवाद—आँखका संवर (=संयम) ठीक है, ठीक है कानका संवर घ्राण (=नाक) संवर ठीक है, ठीक है जीभका संवर ।

३६१—कायेन संवरो साधु साधु वाचाय संवरो ।
मनसा संवरो साधु साधु सब्बत्थ संवरो ।
सब्बत्थ संवुतो भिक्खु सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥२॥

(कायेन संवरः साधुः साधुः वाचा संवरः ।
मनसा संवरः साधुः साधुः सर्वत्र संवरः ।
सर्वत्र संवृतो भिक्षुः सर्वदुःखात् प्रमुच्यते ॥२॥)

अनुवाद—कायाका सवर (=संयम) ठीक है, ठीक है वचन का संवर;
मनका संवर ठीक है, ठीक है सर्वत्र (इन्द्रियों) का संवर,
सर्वत्र सवर-युक्त भिक्षु सारे दुःखों से छूट जाता है।

जेतवन हत्थघातक (भिक्षु)

३६२–हत्थसञ्ञतो पादसञ्ञतो
वाचाय सञ्ञतो सञ्ञतुत्तमो ।
अज्झत्तरतो समाहितो एको
सन्तुसितो तमाहु भिक्खू ॥ ३ ॥

(हस्तसयत पादसयतो वाचा संयत सयतोत्तमः ।
अध्यात्मरत. समाहित एक. सन्तुष्टस्तमाहुर्भिक्षुम् ॥३॥)

अनुवाद—जिसके हाथ, पैर और वचन में संयम है (जो) उत्तम संयमी है, जो घटके भीतर (= अध्यात्म) रत, समाधियुक्त, अकेला (और) सन्तुष्ट है, उसे भिक्षु कहते हैं।

जेतवन कोकालिय

३६३–यो मुखसञ्ञतो भिक्खू मन्तभाणी अनुद्धतो ।
अत्थं धम्मञ्च दीपेति मधुरं तस्स भासितं ॥ ४ ॥

(यो मुखसयतो भिक्षुर्मंत्रभाणी अनुद्धतः ।
अर्थं धर्मं च दीपयति मधुर तस्य भाषितम् ॥४॥)

अनुवाद—जो मुख में संयम रखता है, मनन करके बोलता है, उद्धत नहीं है, अर्थ और धर्म को प्रकट करता है, उसका भाषण मधुर होता है।

जेतवन धम्माराम (थेर)

३६४–धम्मारामो धम्मरतो धम्मं अनुविचिन्तयं ।
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु सद्धम्मा न परिहायति ॥५॥
(धर्मारामो धर्मरतो धर्मं अनुविचिन्तयन् ।
धर्ममनुस्मरन् भिक्षु सद्धर्मान्न परिहीयते ॥५॥)

अनुवाद—धर्म में रमण करनेवाला, धर्म में रत, धर्म का चिन्तन करते धर्म का अनुस्मरण करते भिक्षु सच्चे धर्म से च्युत नहीं होता।

राजगृह (वेळुवन) विपक्ष-सेवक (भिक्षु)

३६५–सलाभं नातिमञ्ञेय्य, नाञ्ञेसं पिहयं चरे ।
अञ्ञेसं पिहयं भिक्खु समाधिं नाधिगच्छति ॥ ६ ॥
(स्वलाभं नातिमन्येत नान्येषां स्पृहयन् चरेत् ।
अन्येषां स्पृहयन् भिक्षुः समाधिं नाऽधिगच्छति ॥६॥)

अनुवाद—अपने लाभकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। दूसरों के (लाभ) की स्पृहा न करनी चाहिये। दूसरों के (लाभकी) स्पृहा करने वाला भिक्षु समाधि (=चित्तकी एकाग्रता) को नहीं प्राप्त करता।

३६६–अप्पलाभोपि चे भिक्खु सलाभं नातिमञ्ञति ।
तं वे देवा पसंसन्ति सुद्धाजीविं अतन्दितं ॥ ७ ॥
(अल्पलाभोऽपि चेद् भिक्षुः स्वलाभं नाऽतिमन्यते ।
तं वै देवाः प्रशंसन्ति शुद्धाऽऽजीवं अतन्द्रितम् ॥७॥)

अनुवाद—चाहे अल्प ही हो, भिक्षु अपने लाभ की अवहेलना न करे। उसी की देवता प्रशंसा करते हैं, (जो) शुद्ध जीविकावाला और आलस्य रहित है।

जेतवन (पाँच अग्रदायक भिक्षु)

३६७—सब्बसो नाम-रूपस्मिं यस्स नत्थि ममायितं ।
असता च न सोचति स वे भिक्खूति वुच्चति ॥८॥

(सर्वशो नामरूपे यस्य नाऽस्ति ममायितम् ।
असति च न शोचति स वै भिक्षुरित्युच्यते ॥८॥)

अनुवाद—नाम-रूप (= जगत) में जिसकी बिल्कुल ही ममता नहीं, न होनेपर (जो) शोक नहीं करता, वही भिक्षु कहा जाता है।

जेतवन वहुतसे भिक्षु

३६८—मेत्ताविहारी यो भिक्खू पसन्नो बुद्धसासने ।
अधिगच्छे पदं सन्तं सङ्खारूपसमं सुखं ॥९॥

(मैत्री विहारी यो भिक्षु प्रसन्नो बुद्धशासने ।
अधिगच्छेत् पदं शान्तं संस्कारोपशमं सुखम् ॥९॥

अनुवाद—मैत्री (-भावना) से विहार करता जो भिक्षु बुद्ध के उपदेश में प्रसन्न (=श्रद्धावान्) रहता है। (वह) सभी संस्कारों को शमन करने वाले शान्त और सुखमय पदको प्राप्त करता है।

३६९—सिञ्च भिक्खू ! इमं नावं सित्ता ते लहुमेस्सति ।
छेत्वा रागञ्च दोसञ्च ततो निब्बाणमेहिसि ॥१०॥

(सिंच भिक्षो ! इमां नावं सिक्ता ते लघुत्वं एष्यति ।
छित्वा रागं च द्वेषं च ततो निर्वाणमेष्यसि ॥१०॥)

अनुवाद—हे भिक्षु ! इस नावको उलीचो, उलीचने पर यह तुम्हारे लिये हल्की हो जायेगी। राग और द्वेषको छेदन कर फिर तुम निर्वाण को प्राप्त होगे।

३७०—पञ्च छिन्दे पञ्च जहे पञ्च चुत्तरि भावये।
पञ्च सङ्गातिगो भिक्खु ओघतिण्णो ति वुच्चति ॥११॥

(पंच छिन्धि पंच जहीहि पंचोत्तरं भावयेत्।
पंचसंगातिगो भिक्षु 'ओघतीर्ण' इत्युच्यते ॥११॥)

अनुवाद—(जो रूप राग, मान, उद्धतपना और अविद्या इन) पाँचको छेदन करे; (जो नित्य आत्मा की कल्पना, सन्देह, शील-व्रत पर अधिक जोर, भोगों में राग, और प्रतिहिंसा इन) पाँच को त्याग करे; उपरान्त (श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा) इन पाँच की भावना करे, (जो राग द्वेष, मोह, मान, और झूठी धारणा इन) पाँच के संसर्ग को अतिक्रमण कर चुका है (वह काम, भव, दृष्टि और अविद्यारूपी) ओघों (=बाढ़ों) से उत्तीर्ण हुआ कहा जाता है।

३७१—झाय भिक्खु ! मा च पामदो
मा ते कामगुणे भमस्सु चित्तं।
मा लोहगुळं गिली पमत्तो
मा कन्दी दुक्खमिदन्ति डय्हमानो ॥ १२ ॥

(ध्याय भिक्षो ! मा च प्रमादः
मा ते कामगुणे भ्रमतु चित्तम्।

मा लोहगोल गिल प्रमत्त,
मा क्रन्दी दु खमिदमिति दह्यमान ॥१२॥)

अनुवाद—हे भिक्षु ! ध्यानमें लगो, मत गफलत करो, तुम्हारा चित्त मत भोगोंके चक्करमें पड़े, प्रमत्त होकर मत लोहेके गोलेको निगलो, '(हाय) यह दु ख' कहकर दग्ध होवे (पीछे) मत तुम्हें क्रन्दन करना पड़े।

२७२–नत्थि झानं अपञ्ञस्स पञ्ञा नत्थि अझायतो।
यम्हि झानञ्च पञ्ञा च स वे निब्बाणसन्तिके ॥१३॥

(नाऽस्ति ध्यानमप्रज्ञस्य प्रज्ञा नाऽस्त्यध्यायत ।
यस्मिन् ध्यान च प्रज्ञा च सवै निर्वाणाऽन्तिके ॥१३॥)

अनुवाद—प्रज्ञाविहीन (पुरुष) को ध्यान नहीं (होता) है, ध्यान (एकाग्रता) न करनेवालेको प्रज्ञा नहीं हो सकती। जिसमें ध्यान और प्रज्ञा (दोनों) हैं, वही निर्वाणके समीप है।

२७३–सुञ्ञागार पविट्ठस्स सन्तचित्तस्स भिक्खुनो।
अमानुसी रती होति सम्माधम्मं विपस्सतो ॥१४॥

(शून्यागार प्रविष्टस्य शान्तचित्तस्य भिक्षो ।
अमानुषी रतिर्भवति सम्यग् धर्मं विपश्यत ॥१४॥)

अनुवाद—शून्य (=एकान्त) गृहमें प्रविष्ट, शान्तचित्त भिक्षुको भली प्रकार धर्मका साक्षात्कार करते, अमानुषी रति (=आनन्द) होती है।

२७४–यतो यतो सम्मसति खन्धान उदयब्बय।
लभती पीतिपामोज्जं अमतं त विजानतं ॥१५॥

(यतो यतः संमृशति स्कन्धानामुदयव्ययम् ।
लभते प्रीतिप्रामोद्यं अमृतं तद् विजानताम् ॥१५॥)

अनुवाद—(पुरुष) जैसे जैसे (रूप वेदना संज्ञा संस्कार विज्ञान इन) पाँच स्कन्धोंकी उत्पत्ति और विनाश पर विचार करता है, (वैसे ही वैसे वह) ज्ञानियोंकी प्रीति और प्रमोद (रूपी) अमृतको प्राप्त करता है।

३७५—तत्रायमादि भवति इध पञ्ञस्स भिक्खुनो ।
इन्द्रियगुत्ती सन्तुट्ठी पातिमोक्खे च संवरो ।
मित्ते भजस्सु कल्याणे सुद्धाजीवे अतन्दिते ॥१६॥

(तत्राऽयमादिर्भवतीह प्राज्ञस्य भिक्षोः ।
इन्द्रियगुप्तिः सन्तुष्टिः प्रातिमोक्षे च संवरः ।
मित्राणि भजस्व कल्याणानि शुद्धाजीवान्यतन्द्रितानि ॥१६॥)

अनुवाद—यहाँ प्राज्ञ भिक्षुको आदी (में करना) है —इन्द्रिय-संयम सन्तोष और प्रातिमोक्ष (= भिक्षुओंके आचार) की रक्षा। (वह, इसके लिये) निरालस शुद्ध जीविकावाले अच्छे मित्रोंका सेवन करे।

३७६—पटिसन्थारवुत्तस्स आचारकुसलो सिया ।
ततो पामोज्जबहुलो दुक्खस्सन्तं करिस्सति ॥१७॥

(प्रतिसंस्तारवृत्तस्याऽऽचारकुशलः स्यात् ।
(ततः प्रामोद्यबहुलो दुःखस्याऽन्तं करिष्यति ॥१७॥)

अनुवाद—जो सेवा सत्कार स्वभाववाला तथा आचार (चालन) में निपुण है सानन्द दुःखका अन्त करेगा।

जेतवन पाँच सौ भिक्खु

३७७–वस्सिका विय पुप्फानि मद्दवानि पमुञ्चति ।
एवं रागञ्च दोसञ्च विप्पमुञ्चेथ भिक्खवो ॥१८॥

(वार्षिका इव पुष्पाणि मर्दितानि प्रमुञ्चति ।
एवं रागं च द्वेषं च विप्रमुञ्चत भिक्षवः ॥१८॥

अनुवाद—जैसे जूही कुम्हलाये फूलों को छोड़ देती है, वैसे ही हे भिक्षुओं ! (तुम) राग और द्वेषको छोड़ दो ।

जेतवन (शान्तकाय थेर)

३७८–सन्तकायो सन्तवाचो सन्तवा सुसमाहितो ।
वन्तलोकामिसो भिक्खू उपसन्तो, ति वुच्चति॥१९॥

(शान्तकायो शान्तवाक् शान्तिमान् सुसमाहितः ।
वान्तलोकाऽऽमिषो भिक्षुः 'उपशान्त' इत्युच्यते ॥१९॥)

अनुवाद—काया (और) वचनसे शान्त, भली प्रकार समाधियुक्त शान्ति सहित (तथा) लोकके आमिषको वमन कर दिये हुए भिक्षु को 'उपशान्त' कहा जाता है ।

जेतवन लङ्गूल (थेर)

३७९–अत्तना चोदय'त्तानं पटिवासे अत्तमत्तना ।
सो अत्तगुत्तो सतिमा सुखं भिक्खू विहाहिसि ॥२०॥

(आत्मना चोदयेदात्मानं प्रतिवसेदात्मानं आत्मना ।
स आत्मगुप्तः स्मृतिमान् सुखं भिक्षो ! विहरिष्यसि ॥२०

अनुवाद—(जो) अपने ही आप को प्रेरित करेगा, अपने ही आपको संयम करेगा, वह आत्म-गुप्त (=अपने द्वारा रक्षित) स्मृति-संयुक्त भिक्षु सुखसे विहार करेगा।

३८०—अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति।
तस्मा सञ्ञमयत्तानं अस्सं भद्रं व वाणिजो॥२१॥

(आत्मा ह्यात्मनो नाथ आत्मा ह्यात्मनो गतिः।
तस्मात् संयमयात्मानं अश्वं भद्रमिव वणिक्॥२१॥)

अनुवाद—(मनुष्य) अपने ही अपना स्वामी है, अपने ही अपनी गति है, इसलिए अपनेको संयमी बनावे, जैसे कि सुन्दर घोड़ेको बनिया (संयत करता है)।

राजगृह (वेणुवन) वक्कलि (थेर)

३८१—पामोज्जबहुलो भिक्खु पसन्नो बुद्धसासने।
अधिगच्छे पदं सन्तं सङ्खारूपसमं सुखं॥२२॥

(प्रामोद्यबहुलो भिक्षुः प्रसन्नो बुद्धशासने।
अधिगच्छेत् पदं शान्तं संस्कारोपशमं सुखम्॥२२॥)

अनुवाद—बुद्धके उपदेशमें प्रसन्न बहुत प्रमोदयुक्त भिक्षु संस्कारोंके उपशमन करनेवाला सुखमय शान्त पद को प्राप्त करता है।

श्रावस्ती (पूर्वाराम) सुमन (श्रामणेर)

३८२—यो ह वे दहरो भिक्खु युञ्जते बुद्धसासने।
सो इमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो'व चन्दिमा॥२३॥

(यो ह वै दहरो भिक्षुर्युवते बुद्धशासने ।
स इमं लोकं प्रभासयत्यभ्रान् मुक्त इव चन्द्रमा ॥२३॥)

अनुवाद—जो भिक्षु यौवनमें बुद्ध-शासन (=बुद्धोपदेश, बुद्ध-धर्म)-में संलग्न होता है, वह मेघसे मुक्त चन्द्रमाकी भाँति इस लोकको प्रकाशित करता है।

२५—भिक्षुवर्ग समाप्त

२६—ब्राह्मणवग्गो

जेतवन (एक बहुत श्रद्धालु ब्राह्मण)

३८३–छिन्द सोतं परक्कम्म कामे पनुद ब्राह्मण ! ।
सङ्खारानं खयं ञत्वा अकतञ्ञूसि ब्राह्मण ! ॥१॥

(छिन्धि स्रोतः पराक्रम्य कामान् प्रणुद ब्राह्मण ! ।
संस्काराणां क्षयं ज्ञात्वाऽकृतज्ञोऽसि ब्राह्मण ! ॥१॥)

अनुवाद—हे ब्राह्मण ! (तृष्णा रूपी) स्रोतको छिन्न करदे, पराक्रम कर, (और) कामनाओंको भगादे। संस्कार (= कृत वस्तुओं के उपादान कारणों) के विनाशको जानकर तू अकृत (= न कृत, निर्वाण) को पानेवाला हो जायगा।

जेतवन (बहुतसे भिक्षु)

३८४–यदा द्वयेसु धम्मेसु पारगू होति ब्राह्मणो ।
अथस्स सब्बे संयोगा अत्थं गच्छन्ति जानतो ॥२॥

(यदा द्वयोर्धर्मयोः पारगो भवति ब्राह्मणः ।
अथाऽस्य सर्वे संयोगा अस्तं गच्छन्ति जानतः ॥२॥)

अनुवाद—जब ब्राह्मण दो धर्मों (—चित्त-संयम और भावना) में पारगत हो जाता है, तब उस जानकारके सभी संयोग (= बंधन) अस्त हो जाते हैं।

जेतवन मार

३८५—यस्स पारं अपारं वा पारापारं न विज्जति।
वीतद्दरं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥३॥

(यस्य पारं अपारं वा पारापारं न विद्यते।
वीतदरं विसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३॥)

अनुवाद—जिसके पार (= आँख, कान, नाक, जीभ, काया, मन), अपार (= रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श, धर्म) और पारापार (= मैं और मेरा) नहीं हैं, (जो) निर्भय और अनासक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन (कोई ब्राह्मण)

३८६—झायिं विरजमासीनं कतकिच्चं अनासवं।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४॥

(ध्यायिनं विरजसमासीनं कृतकृत्यं अनास्रवम्।
उत्तमार्थमनुप्राप्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥४॥)

अनुवाद - (जो) ध्यानी, निर्मल आसनबद्ध (= स्थिर), कृतकृत्य आस्रव (= चित्तमल) रहित है, जिसने उत्तम अर्थ (= सत्य) को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

श्रावस्ती (पूर्वाराम) आनन्द (थेर)

३८७—दिवा तपति आदिच्चो रत्तिं आभाति चन्दिमा ।
सन्नद्धो खत्तियो तपति झायी तपति ब्राह्मणो ।
अथ सब्बमहोरत्तिं बुद्धो तपति तेजसा ॥५॥

(दिवा तपत्यादित्यो रात्रावाभाति चन्द्रमा ।
सन्नद्धः क्षत्रियस्तपति ध्यायी तपति ब्राह्मणः ।
अथ सर्वमहोरात्रं बुद्धस्तपति तेजसा ॥५॥)

अनुवाद—दिनमें सूर्य तपता है रातको चन्द्रमा प्रकाशता है, कवचबद्ध (होनेपर) क्षत्रिय तपता है, ध्यानी (होनेपर) ब्राह्मण तपता है, और बुद्ध रात-दिन (अपने) तेजसे सब- (से अधिक) तपता है ।

जेतवन (कोई प्रव्रजित)

३८८—बाहितपापो'ति ब्राह्मणो
समचरिया समणो'ति वुच्चति ।
पब्बाजयमत्तनो मलं
तस्मा पब्बजितो'ति वुच्चति ॥६॥

(बाहितपाप इति ब्राह्मणः समचर्यः श्रमण इत्युच्यते ।
प्रव्राजयन्नात्मनो मलं तस्मात् प्रव्रजित इत्युच्यते ॥६॥)

अनुवाद—जिसने पापको (धोकर) बहा दिया वह ब्राह्मण है, जो समताका आचरण करता है वह समण (= श्रमण = सन्यासी) है (चूँकि) उसने अपने (चित्त-) मलोंको हटा दिया इसीलिये वह प्रव्रजित कहा जाता है ।

जेतवन सारिपुत्त (थेर)

३८९–न ब्राह्मणस्स पहरेय्य नास्स मुञ्चेथ ब्राह्मणो ।
धि ब्राह्मणस्स हन्तार ततो धि यस्स मुञ्चति ॥७॥

(न ब्राह्मणं प्रहरेत् नाऽस्मै मुञ्चेद् ब्राह्मण· ।
धिग् ब्राह्मणस्य हन्तार ततो धिग् यस्मै मुंचति ॥७॥)

अनुवाद—ब्राह्मण (=निष्पाप) पर प्रहार नहीं करना चाहिये, और ब्राह्मणको भी उस (प्रहारदाता) पर (कोप) नहीं करना चाहिये, ब्राह्मणको जो मारता है, उसे धिक्कार है, और धिक्कार उसको भी है, जो (उसके लिये) कोप करता है।

३९०–न ब्राह्मणस्सेतदकिञ्चि सेय्यो
यदा निसेधो मनसो पियेहि ।
यतो यतो हिंसमनो निवत्तति
ततो ततो सम्मति एव दुक्ख ॥८॥

(न ब्राह्मणस्यैतद् अकिंचित् श्रेयो
यदा निषेधो मनसा प्रियेभ्य ।
यतो यतो हिंस्रमनो निवर्तते
ततस्तत शाम्यत्येव दु खम् ॥ ८ ॥)

अनुवाद—ब्राह्मणके लिये यह बात कम कल्याण (कारी) नहीं है, जो वह प्रिय (पदार्थों) से मनको हटा लेता है, जहाँ जहाँ मन हिंसासे मुड़ता है, वहाँ वहाँ दु ख (अवश्य) ही शान्त हो जाता है।

जेतवन — महाप्रजापती गोतमी

३९१—यस्स कायेन वाचाय मनसा नत्थि दुक्कतं ।
सवुतं तीहि ठानेहि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥९॥

(यस्य कायेन वाचा मनसा नाऽस्ति दुष्कृतम् ।
संवृतं त्रिभिः स्थानैः, तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥९॥)

अनुवाद—जिसके मन वचन कायसे दुष्कृत (=पाप) नहीं होते (जो इन) तीनों ही स्थानों से संवर (=संयम-युक्त) है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

वेणुवन — सारिपुत्त (थेर)

३९२—यम्हा धम्मं विजानेय्य सम्मासम्बुद्धदेसितं ।
सक्कच्चं तं नमस्सेय्य अग्गिहुत्तं व ब्राह्मणो ॥१०॥

(यस्माद् धर्मं विजानीयात् सम्यक्-सम्बुद्ध-देशितम् ।
सत्कृत्य तं नमस्येद् अग्निहोत्रमिव ब्राह्मणः ॥१०॥)

अनुवाद—जिस (उपदेशक) से सम्यक्संबुद्ध (=बुद्ध) द्वारा उपदिष्ट धर्मको जाने उसे (वैसेही) सत्कारपूर्वक नमस्कार करे जैसे अग्नि होत्रको ब्राह्मण ।

जेतवन — जटिल ब्राह्मण

३९३—न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
यम्हि सच्चञ्च धम्मो च
सो सुची सो च ब्राह्मणो ॥११॥

(न जटाभिर्न गोत्रैर्न जात्या भवति ब्राह्मणः ।
यस्मिन् सत्यं च धर्मश्च स शुचिः स च ब्राह्मणः ॥११॥)

अनुवाद—न जटासे, न गोत्रसे , न जन्मसे ब्राह्मण होता है, जिसमें सत्य और धर्म हैं, वही, शुचि (= पवित्र)है, और वही ब्राह्मण है।

वैशाली (कूटागारशाला) (पाखंडी ब्राह्मण)

३९४–किं ते जटाहि दुम्मेध ! किं ते अजिनसाटिया ।
अब्भन्तरं ते गहनं बाहिरं परिमज्जसि ॥ १२ ॥

(किं ते जटाभिः दुर्मेध ! किं तेऽजिनशाट्या ।
आभ्यन्तरं ते गहनं वाह्यं परिमार्जयसि ? ॥१२॥)

अनुवाद—हे दुर्बुद्धि ! जटाओंसे तेरा क्या (बनेगा), (और)मृग-चर्मके पहिननेसे तेरा क्या ? भीतर (दिल) तो तेरा (राग आदि मलोंसे)परिपूर्ण है, बाहर क्या धोता है ?

राजगृह (गृध्रकूट) किसा गोतमी

३९५—पंसुकूलधरं जन्तुं किसं धमनिसन्थतं ।
एकं वनस्मिं झायन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १३ ॥

(पांशुकूलधरं जन्तुं कृशं धमनिसन्ततम् ।
एकं वने ध्यायन्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ।१३॥)

अनुवाद—जो प्राणी फटे चीथड़ों को धारण करता है, जो दुबला पतला और नसोंसे मढे शरीरवाला है, जो अकेला वनमें ध्यानरत रहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन (एक ब्राह्मण)

३९६—न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसम्भवं।
'भो वादि' नाम सो होति स वे होति सकिञ्चनो।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१४॥

(न चाहं ब्राह्मणं ब्रवीमि योनिजं मातृसंभवम्।
'भो वादी' नाम स भवति स वै भवति सकिंचनः।
अकिंचनं अनादानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥१४॥)

अनुवाद—माता और योनिसे उत्पन्न होने से मैं (किसी को) ब्राह्मण नहीं कहता। * वह 'भो वादी' है, वह (तो) संग्रही है; मैं ब्राह्मण उसे कहता हूँ जो अपरिग्रही और लेनेकी (इच्छा) न रखनेवाला है।

राजगृह (वेणुवन) उग्रसेन (श्रेष्ठिपुत्र)

३९७—सब्बसञ्ञोजनं छेत्वा यो वे न परितस्सति।
सङ्गातिगं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१५॥

(सर्वसंयोजनं छित्त्वा यो वै न परित्रस्यति।
संगातिगं विसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥१५॥)

---

*उस समयके ब्राह्मण ब्राह्मणको ही "भो" कहकर संबोधन किया करते थे।

अनुवाद—जो सारे संयोजनों (=बंधनों) को काटता है, जो कि भय नहीं खाता, जो संग और आसक्ति से विरत है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन (दो ब्राह्मण)

३९८—छेत्वा नन्दिं वरत्तञ्च सन्दानं सहनुक्कमं।
उक्खित्तपलिघं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१६॥

(छित्त्वा नन्दिं वरत्रां च सन्दानं सहनुक्रमम्।
उत्क्षिप्तपरिघं बुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥१६॥)

अनुवाद—नन्दी (=क्रोध), वरत्रा (=तृष्णा रूपी रस्सी), सन्दान (=६२ प्रकार के मतवादरूपी पगहे), और हनुक्रम (=मुँह पर बाँधने के जाबे) को काट एवं परिघ (=जूए) को फेंक जो बुद्ध (=ज्ञानी) हुआ, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

राजगृह (वेणुवन) (अक्कोस) भारद्वाज

३९९—अक्कोसं वधबन्धञ्च अदुट्ठो यो तितिक्खति।
खन्तिबलं बलानीकं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥१७॥

(आक्रोशं वध-बन्धं च अदुष्टो यस्तितिक्षति।
क्षान्तिबलं बलानीकं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥१७॥)

अनुवाद—जो बिना दूषित (चित्त) किए गाली, वध और बन्धनको सहन करता है, क्षमा बल ही जिसके बल (=सेना) का सेनापति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन (एक ब्राह्मण)

३९६—न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसम्भवं ।
'भो वादि' नाम सो होति स चे होति सकिञ्चनो ।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१४॥

(न चाहं ब्राह्मणं ब्रवीमि योनिजं मातृसंभवम् ।
'भो वादी' नाम स भवति स चेद् भवति सकिंचनः ।
अकिंचनं अनादानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥१४॥)

अनुवाद—माता और योनिसे उत्पन्न होने से मैं (किसी) को ब्राह्मण नहीं कहता, वह 'भो वादी'* है, वह (तो) संग्रही है; मैं ब्राह्मण उसे कहता हूँ जो अपरिग्रही और लेनेकी (इच्छा) न रखनेवाला है।

राजगृह (वेणुवन) उग्गसेन (श्रेष्ठिपुत्र)

३९७—सब्बसंयोजनं छेत्वा यो वे न परितस्सति ।
सङ्गातिगं विसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१५॥

(सर्वसंयोजनं छित्वा यो वै न परित्रस्यति ।
सङ्गातिगं विसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥१५॥)

---

*उस समयके ब्राह्मण ब्राह्मणको ही "भो" शब्दसे संबोधन किया करते थे।

अनुवाद—जो यहीं (=इसी जन्म में) अपने दुःखों के विनाशको जान लेता है, जिसने अपने बोझ को उतार फेंका, और जो आसक्तिरहित है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

राजगृह (गृध्रकूट)　　खेमा (भिक्षुणी)

४०४—गम्भीरपञ्ञं मेधाविं मग्गामग्गस्स कोविदं ।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२१॥

(गभीरप्रज्ञं मेधाविनं मार्गामार्गस्य कोविदम् ।
उत्तमार्थमनुप्राप्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२१॥)

अनुवाद—जो गम्भीर प्रज्ञावाला, मेधावी, मार्ग अमार्ग का ज्ञाता, उत्तम पदार्थ (=सत्य) को पाये है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन　　(पब्भारवासी) तिस्स (थेर)

४०४—असंसट्ठं गहट्ठेहि अनागारेहि चूभयं ।
अनोकसारिं अप्पिच्छं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२२॥

(असंसृष्टं गृहस्थैः अनागारैश्चोभाभ्याम् ।
अनोकसारिणं अल्पेच्छं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२२॥)

अनुवाद—घरवाले (=गृहस्थ) और बेघरवाले दोनों ही में जो लिप्त नहीं होता, जो बिना ठिकाने के घूमता तथा बेचाह है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन　　(कोई भिक्षु)

४०५—निधाय दण्डं भूतेसु तसेसु थावरेसु च ।
यो न हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२३॥

राजगृह (वेणुवन) — सारिपुत्र (थेर)

४००—अक्कोधनं वतवन्तं सीलवन्तं अनुस्सदं ।
दन्तं अन्तिमसारीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१८॥

(अक्रोधनं व्रतवन्तं शीलवन्तं अनुश्रुतम् ।
दान्तं अन्तिमशरीरं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥१८॥)

अनुवाद—जो अक्रोधी, व्रती, शीलवान्, बहुश्रुत, संयमी (=दान्त) और अन्तिम शरीरवाला है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

राजगृह (वेणुवन) — उप्पलवण्णा (थेरी)

४०१—वारि पोक्खरपत्ते 'व आरग्गेरिव सासपो ।
यो न लिम्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१९॥

(वारि पुष्करपत्र इव, आराग्र इव सर्षप ।
यो न लिप्यते कामेषु तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥१९॥)

अनुवाद—कमल के पत्ते पर जल, और आरे के नोक पर सरसों की भाँति जो भोगों में लिप्त नहीं होता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

वेणुवन — (कोई ब्राह्मण)

४०२—यो दुक्खस्स पजानाति इधेव खयमत्तनो ,
पन्नभारं विसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२०॥

(यो दुःखस्य प्रजानातीहैव क्षयमात्मनः ।
पन्नभारं विसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२०॥)

राजगृह (वेणुवन) पिलिन्द वच्छ (थेर)

४०८–अकक्कसं विञ्ञापनिं गिरं सच्चं उदीरये।
याय नाभिसजे किञ्चि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२६॥

(अकर्कशां विज्ञापनीं गिर सत्या उदीरयेत्।
यया नाऽभिषजेत् किंचित् तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२६॥)

अनुवाद–(जो इस प्रकार की) अकर्कश, आदरयुक्त (तथा) सच्ची वाणी को बोले कि, जिसमे कुछ भी पीड़ा न होवे, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन कोई स्थविर

४०९–यो 'ध दीघं वा रस्सं वा अणुं थूलं सुभासुभं।
लोके अदिन्नं नादियते तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२७॥

(य इह दीर्घं वा ह्रस्वं वाऽणु स्थूलं शुभाऽशुभम्।
लोकेऽदत्त नादत्ते तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२७॥)

अनुवाद–(चीज) चाहे दीर्घ हो या ह्रस्व, मोटी हो या पतली, शुभ हो या अशुभ, जो ससार मे (किसी भी) बिना दी चीज को नहीं लेता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन सारिपुत्त (थेर)

४१०–आसा यस्स न विज्जन्ति अस्मिं लोके परम्हि च।
निरासयं विसयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२८॥

(आशा यस्य न विद्यन्तेऽस्मिन् लोके परस्मिन् च।
निराशय विसयुक्त तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२८॥)

(निधाय दण्डं भूतेषु त्रसेषु स्थावरेषु च।
यो न हन्ति न घातयति तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम्॥२३॥)

अनुवाद—चर अचर (सभी) प्राणियों में प्रहारविरत हो, जो न मारता है, न मारने की प्रेरणा करता है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन चार श्रामणेर

४०६—अविरुद्धं विरुद्धेसु अत्तदण्डेसु निब्बुतं।
सादानेसु अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥२४॥

(अविरुद्धं विरुद्धेषु, आत्तदण्डेषु निर्वृतम्।
सादानेष्वनादानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम्॥२४॥)

अनुवाद—जो विरोधियों के बीच विरोध रहित रहता है, जो दण्डधारियों के बीच (दण्ड-)रहित है, संग्रहियों में जो संग्रहरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

राजगृह (वेणुवन) महापन्थक (थेर)

४०७—यस्स रागो च दोसो च मानो मक्खो च पातितो।
सासपोरिव आरग्गा तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥२५॥

(यस्य रागश्च द्वेषश्च मानो म्रक्षश्च पातितः।
सर्षप इवाऽऽराग्रात् तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम्॥२५॥)

अनुवाद—आरे के ऊपर सरसों की भाँति, जिसके (चित्त से) राग, द्वेष, मान, डाह, फेंक दिये गये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन चन्दाभ (थेर)

४१३—चन्दं, व विमलं सुद्धं विप्पसन्नमनाविलं ।
नन्दीभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३१॥

(चन्द्रमिव विमलं शुद्धं विप्रसन्नमनाविलम् ।
नन्दीभवपरिक्षीणं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३१॥)

अनुवाद—जो चन्द्रमाकी भाँति विमल, शुद्ध, स्वच्छ=अनाविल है, (तथा जिसकी) सभी जन्मों की तृष्णा नष्ट हो गई है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

कुण्डिया (कोलिय) सीवलि (थेर)

४१४—यो इमं पलिपथं दुग्गं संसारं मोहमच्चगा ।
तिण्णो पारगतो झायी अनेजो अकथंकथी ।
अनुपादाय निब्बुतो तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३२॥

(य इमं प्रतिपथं दुर्गं संसारं मोहमत्यगात् ।
तीर्णः पारगतो ध्याय्यनेजोऽकथंकथी ।
अनुपादाय निर्वृतः तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३२॥)

अनुवाद—जिसने इस दुर्गम संसार, (=जन्म मरण) के चक्कर में डालनेवाले मोह (रूपी) उलटे मार्ग को त्याग दिया, जो (संसार से) पारंगत, ध्यानी तथा तीर्ण (=तर गया) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

अनुवाद — इस लोक और परलोक के विषय में जिसकी आकांक्षायें (=चाह) नहीं रह गई हैं, जो आकांक्षारहित और आसक्तिरहित है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन महामोग्गल्लान (थेर)

४११—यस्साऽऽलया न विज्जन्ति अञ्ञाय अकथंकथी।
अमतोगधं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२९॥

(यस्याऽऽलया न विद्यन्ते आज्ञायाऽकथंकथी।
अमृतावगाधमनुप्राप्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२९॥)

अनुवाद—जिसको आलय (=तृष्णा) नहीं है जो भली प्रकार जानकर अकथ (-पद) का कहनेवाला है जिसने गाढ़े अमृत को पा लिया, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

श्रावस्ती (पूर्वाराम) रेवत (थेर)

४१२—यो'ध पुञ्ञञ्च पापञ्च उभो सङ्गं उपच्चगा।
असोकं विरजं सुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३०॥

(य इह पुण्यं च पापं चोभयोः संगं उपात्यगात्।
अशोकं विरजं शुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३०॥)

अनुवाद—जिसने यहाँ पुण्य और पाप दोनों की आसक्ति को छोड़ दिया जो शोकरहित, निर्मल (और) शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन चन्दाभ (थेर)

४१३–चन्दं, व विमलं सुद्धं विप्पसन्नमनाविलं ।
नन्दीभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३१॥

(चन्द्रमिव विमलं शुद्धं विप्रसन्नमनाविलम् ।
नन्दीभवपरिक्षीणं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३१॥)

अनुवाद—जो चन्द्रमाकी भाँति विमल, शुद्ध, स्वच्छ = अनाविल है, (तथा जिसकी) सभी जन्मों की तृष्णा नष्ट हो गई है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

कुण्डिया (कोलिय) सीवलि (थेर)

४१४–यो इमं पलिपथं दुग्गं संसारं मोहमच्चगा ।
तिण्णो पारगतो झायी अनेजो अकथंकथी ।
अनुपादाय निब्बुतो तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३२॥

(य इमं प्रतिपथं दुर्गं संसारं मोहमत्यगात् ।
तीर्णः पारगतो ध्याय्यनेजोऽकथंकथी ।
अनुपादाय निर्वृतः तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३२॥)

अनुवाद– जिसने इस दुर्गम संसार, (=जन्म मरण) के चक्कर में डालनेवाले मोह (रूपी) उलटे मार्ग को त्याग दिया, जो (संसार से) पारंगत, ध्यानी तथा तीर्ण (=तर गया) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

वेलुवन

जोतिक (थेर)

४१५—यो 'ध कामे पहत्वान अनागारो परिब्बजे।
कामभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३३॥
(य इह कामान् प्रहायाऽनागारः परिव्रजेत्।
कामभवपरिक्षीणं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३३॥)

अनुवाद—जो यहाँ भोगों को छोड़ बेघर हो प्रव्रजित (= संन्यासी) हो गया है जिसके भोग और जन्म नष्ट हो गये उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

राजगृह (वेलुवन)

जटिल (थेर)

४१६—यो'ध तण्हं पहत्वान अनागारो परिब्बजे।
तण्हाभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३४॥
(य इह तृष्णां प्रहायाऽनागारः परिव्रजेत्।
तृष्णाभवपरिक्षीणं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३४॥)

अनुवाद—जो यहाँ तृष्णा को छोड़ बेघर बन प्रव्रजित है जिसकी तृष्णा और (पुनर्) जन्म नष्ट हो गये उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

राजगृह (वेलुवन)

(भूतपूर्व नट भिक्षु)

४१७—हित्वा मानुसकं योगं दिब्बं योगं उपच्चगा।
सब्बयोगविसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३५॥
(हित्वा मानुषकं योगं दिव्यं योगं उपात्यगात्।
सर्वयोगविसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३५॥)

अनुवाद—मानुष (-भोगों के) लाभोंको छोड़, दिव्य (भोगों के) लाभको भी (जिसने) त्याग दिया, सारे ही लाभोंमें जो आसक्त नहीं है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४१८—हित्वा रतिञ्च अरतिञ्च सीतिभूतं निरुपधिं।
सब्बलोकाभिभुं वीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३६॥

(हित्वा रतिं चाऽरतिं च शीतीभूतं निरूपधिम्।
सर्वलोकाऽभिभुवं वीरं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३६॥)

अनुवाद—रति और अरति (—घृणा) को छोड़, जो शीतल-स्वभाव (तथा) क्लेशरहित है, (जो ऐसा) सर्वलोकविजयी, वीर है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

राजगृह (वेणुवन) वङ्गीस (थेर)

४१९—चुतिं यो वेदि सत्तानं उपपत्तिञ्च सब्बसो।
असत्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३७॥

(च्युतिं यो वेद सत्त्वानां, उपपत्तिं च सर्वशः।
असक्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३७॥)

अनुवाद—जो प्राणियों की च्युति (=मृत्यु) और उत्पत्ति को भली प्रकार जानता है, (जो) आसक्तिरहित सुगत (=सुंदर गति को प्राप्त) और बुद्ध (=ज्ञानी) है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४२०—यस्स गतिं न जानन्ति देवा गन्धब्बमानुसा।
खीणासवं अरहन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३८॥

(यस्य गतिं न जानन्ति देव-गन्धर्व-मानुषाः ।
क्षीणास्रवं अरहन्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३८॥)

अनुवाद—जिसकी गति (=पहुँच) को देवता गन्धर्व और मनुष्य नहीं जानते जो क्षीणास्रव (=रागादिरहित) और अर्हत् है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

राजगृह (वेणुवन) धम्मदिन्ना (थेरी)

४२१—यस्स पुरे च पच्छा च मज्झे च नत्थि किञ्चनं ।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३९॥

(यस्य पुरश्च पश्चाच्च मध्ये च नाऽस्ति किंचन ।
अकिंचनमनादानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३९॥)

अनुवाद—जिसके पूर्व, और पश्चात् और मध्यमें कुछ नहीं है, जो परिग्रहरहित=आदानरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन अङ्गुलिमाल (थेर)

४२२—उसभं पवरं वीरं महेसिं विजिताविनं ।
अनेजं नहातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४०॥

(ऋषभं प्रवरं वीरं महर्षिं विजितवन्तम् ।
अनेजं स्नातकं बुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥४०॥)

अनुवाद—(जो) ऋषभ (=श्रेष्ठ), प्रवर, वीर, महर्षि, विजेता, अकम्प्य, स्नातक और बुद्ध है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन देवहित (ब्राह्मण)

४२३—पुब्बेनिवास यो वेदि सग्गापायञ्च पस्सति ।
अथो जातिक्खयंपत्तो अभिञ्ञावोसितो मुनि ।
सब्बवोसितवोसान तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४१॥

(पूर्वनिवास यो वेद स्वर्गाऽपाय च पश्यति ।
अथ जातिक्षणयप्राप्तोऽभिज्ञाव्यवमितो मुनि ।
सर्वव्यवसितव्यवसान तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥४१॥)

अनुवाद —जो पूर्व जन्म को जानता है, स्वर्ग और अगति को जो देखता है; और जिसका (पुनर्-)जन्म क्षीण हो गया (जो) अभिज्ञा (=दिव्यज्ञान) परायण है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

२६—ब्राह्मणवर्ग समाप्त

(इति)

गाथा-सूची

अकक्कसं	२६।२६	अत्ता हि अत्तनो	१२।४
अकत दुक्कत	२२।९	अत्थम्हि जातम्हि	२३।१२
अक्कोच्छि म	१।४,३	अथ पापानि	१०।८
अक्कोधन वतवन्त	२६।१८	अथवस्स अगारानि	१०।१२
अक्कोधेन जिने	१७।३	अनवट्ठितचित्तस्स	३।६
अचरित्वा ब्रह्म-	११।१०,११	अनवस्सुत चित्तस्स	३।७
अक्कोस वधबन्ध	२६।१७	अनिक्कसावो कासाव	१।९
अचिर वत'य	३।९	अनुपुब्बेन मेधावी	१८।५
अञ्ञा हि लाभु-	५।१६	अनुपवादो अनुपघातो	१४।७
अट्ठीन नगर	११।५	अनेकजातिससा-	११।८
अत्तदत्थ	१२।१०	अन्धभूतो अय	१३।८
अत्तना चोद-	२५।२०	अपि दिब्बे	१४।९
अत्तना' व कत	१२।५	अपुञ्ञलाभो च	२२।५
अत्तना' व कत पाप	१२।९	अप्पका ते	६।१०
अत्तानञ्चे तथा	१२।३	अप्पमत्तो अय	४।१३
अत्तानञ्चे पिय	१२।१	अप्पमत्तो पमत्तेसु	२।९
अत्तानमेव पठमं	१२।२	अप्पमादरता होथ	२३।८
अत्ता ह वे जित	८।५	अप्पमादरतो भिक्खू	२।११,१२
अत्ता हि अत्तनो	२५।२१	अप्पमादेन मघवा	२।१०

अप्पमाद्या, मर्त २।१
अप्पम्पि चे सहिर्त ११२
अप्पम्प्सामोपि चे २५।०
अप्पस्सुता ११।७
अमये च मय २१।१२
अमित्वरेच ६।१
अमिवादनसीलिस्स ८।१
अमूतवादी निरर्व २२।१
असता 'व मर्त १८।९
अयोगे युम्म १६।१
अस्सद्धो चेपि १।१४
असम्मिता चे २२।११
अपच्च मच्च २१।११
अविरुद्धं विरुद्धेसु २६।२४
असम्क्षायमत्ता १८।७
अमर्त मावन ५।१४
असंखत १९।२२
असारे सारमतिनो १।११
अनाहसेन चम्मेन १६।१
अस्सुमानुसस्सि १।८
अस्सद्धो अकतम्न ७।८
अस्सा यथा भद्रो १।१६
आई मार्गा' च २३।१
आरोग्या पे १७।५
आकास च पद १८।२ २१
आरम्भमत्मा १९।८
अ। सकारभूते ७।१६
आसा यस्स २६।२८
इध पुरे २३।७
इध तप्पति १।१७
इध नम्दति १।१८
इध मोदति १।१६
इध वस्सं २।१४
इध सोचति १।१५
उच्छिन्द सिनेह- २०।१३
उट्ठानकालम्हि २।८
उट्ठानवतो सतिमतो २।४
उट्ठानेन २।५
गमिहे १३।२
उदकं हि ६।५,१०
उपनीतवयो १८।१
उय्युञ्जन्ति ७।२
उसमं पवर २६।४०
एकं धम्मं १३।१०
एकस्स चरितं २३।११
एकासनं एकसेय्य २१।१६
एतं खो सरणं १७।१४
एतं दल्हं १७।१३
एतमत्थवसं २।१७
एतं विसेसतो २।२
एतं हि तुम्हे २।१
एथ पस्सथिमं १३।५
एवम्भो पुरिस १८।१४
परकनाधि- ४।१

एसेंव मग्गो	२०।२	चरन्ति बाला	५।७
ओत्तदेय्य	६।२	चिरप्पवासिं	१६।११
कण्ह धम्मं	६।१२	चुतिं यो वेदि	२६।३७
कयिरञ्चे	२२।८	छन्दजातो	१६।१०
कामतो जायते	१६।७	छिन्द सोत	२६।१
कायप्पकोप	१७।११	छेत्त्वा नन्दि	२६।१६
कायेन संवरो	२५।२	जय वेर पसवति	१५।५
कायेन संवुता	१७।१४	जिघच्छापरमा	१५।७
कासावकण्ठा	२२।२	जीरन्ति वे राज-	११।६
किच्छो मनुस्स-	१४।४	झाय भिक्खु	२५।१२
किं ते जटाहि	२६।१२	झायिं विरज-	२६।४
कुम्भूपम	३।८	तञ्च कम्म	५।६
कुसो यथा	२२।६	तण्हाय जायते	१६।८
को इम पठविं	४।१	ततो मला	१८।६
कोध जहे	१७।१	तत्राभिरति	६।१३
खन्ती परम तपो	१४।६	तत्रायमादि	२५।१६
गतद्धिनो	७।१	तथेव कत-	१६।१२
गब्भमेके	६।११	तमुत्त-पसु-	२०।१५
गम्भीरपञ्ञ-	२६।२१	त वो वदामि	२४।४
गहकारक	११।६	तसिनाय पुरक्खता	२४।१०,६
गामे वा यदि	७।६	तस्मा पिय	१६।३
चक्खुना	२५।१	तस्मा हि धीर	१५।१२
चत्तारि ठानानि	२२।४	तिणदोसानि	२४।२३,२४,२५,२६
चन्दनं तगर	४।१२	तुम्हेहि किच्च	२०।४
चन्दं व विमल-	२६।३१	ते झायिनो	२।३
ते तादिसे	१४।१८	न त माता	३।११
तेसं सम्पन्न-	४।१४	न ताव.ता धम्म-	१६।४

ददन्ति वे	१८।१५	न तेन अरियो	१९।१५
दन्तं नयन्ति	२३।२	न तेन थेरो	१९।५
दिवा तपति	२६।५	न तेन पण्डितो	१९।३
दिसो दिसं	३।१०	न तेन भिक्खु	१९।११
दीघा जागरतो	५।१	न तेन होति	१९।१
दुक्खं	१४।१२	नत्थि झानं	२५।१३
दुन्निग्गहस्स	३।३	नत्थि राग	१५।६
दुप्पब्बज्जं	२१।१३	नत्थि राग–	१८।१७
दुल्लभो	१४।१५	न नग्ग–	१०।१३
दूरङ्गमं	३।५	न परेसं	४।७
दूरे सन्तो	२१।१५	न पुप्फगन्धो	४।११
धनपालको	२३।५	न ब्राह्मणस्स–	२६।७
धम्मं चरे	१३।३	न ब्राह्मणस्से–	२६।८
धम्मपीती	६।४	न भजे	६।३
धम्मारामो	२५।५	न मुण्डकेन	१९।९
न अत्तहेतु	६।९	न मोनेन	१९।१३
न अन्तलिक्खे	९।१२,१३	न वाक्करण–	१९।७
न कहापण	१४।८	न वे कदरिया	१३।११
नगरं यथा	२२।१०	न सन्ति पुत्ता	२०।१६
न चाहं	२६।१४	न सीलब्बत–	१९।१६
न चाहु	१७।८	न हि एतेहि	२३।४
न जटाहि	२६।११	न हि पापं	५।१२
न तं कम्मं	५।८	न हि वेरेन	१।५
न तं दळ्हं	२४।११	निट्ठं गतो	२४।१८
निधाय दण्डं	२६।२३	पियतो जायते	१६।४
निधीनं'व	६।१	पुञ्ञञ्चे पुरिसो	९।३
नेक्खं	१७।१०	पुत्ता मत्थि	५।३

नेत खो सरण	१४।११	पुब्बेनिवास	२६।४१
नेव देवो	८।६	पूजारहे	१४।१७
नो च लभेथ	२३।१०	पेमतो जायते	१६।५
पञ्च छिन्दे	२३।११	पोराणमेत	१७।६
पटिसन्थार	२५।१७	फन्दन चपल	३।१
पठवीसमो	७।६	फुसामि नेक्खम्म	१९।१७
पण्डुपलासो	१८।१	फेनूपम	४।३
पथव्या एकरज्जेन	१३।१२	भद्रो 'पि	५।२
पमादमनु-	२।६	मग्गानट्ठ गिको	२०।१
पमादमप्पसादेन	२।८	मत्तासुखपरिच्चागा	२१।१
परदुक्खूपदानेन	२१।२	मधू'व मञ्ञती	५।१०
परवज्जानुपस्सि-	१८।१९	मनुजस्स पमत्त-	२४।१
परिजिण्णमिदं	११।३	मनोप्पकोप	१७।१३
परे च न	१।६	मनो पुब्बगमा	१।१,२
पविवेकरस	१५।९	ममेव कत-	५।१५
पसुकूलधर	२६।१०	मलित्थिया	१८।८
पस्स चित्तकत	११।२	मातर पितर	२१।५,६
पाणिम्हि चे	९।९	मा पमाद-	२।७
पापञ्चे पुरिसो	९।२	मा पियेहि	१६।२
पापानि परि-	१९।१४	मा' वमञ्ञेथ पाप-	९।६
पापो' पि पस्सति	९।४	मा' वमञ्ञेथ पु	९।७
पामोज्ज बहु-	२५।२२	मा वोच फरुस	१०।५
मासे मासे कुस-	५।११	यस्स कायेन	२६।९
मासे मासे सहस्सेन	८।७	यस्स गतिं	२६।३८
मिद्धी यथा	२३।६	यस्स चेत समु-	१९।८
मुञ्च पुरे	२४।१५	यस्स चेत समु-	१८।१६

मुहुत्तमपि ५।१
मोघविहारी १५।१६
म अप्पंमस्स १२।१
मं एता सदसी १५।२
म किञ्चि पिछ ८।६
मं किञ्चि छि २२।७
यम्हे विञ्ञू १७।६
यतो यतो सम्म- २५।१५
यथागारं दुच्छन्नं १।१३
यथागारं सुच्छन्नं १।१४
यथा दण्डेन १० ।७
यथापि पुप्फ- ८।१
यथापि भमरो ४।६
यथापि मूले २४।५
यथापि रहदो ६।७
यथापि रुचिरं ४।८,९
यथा बुब्बुलक १३।४
यथा सङ्कार ४।१५
यथा इसेसु २६।१
यथा यम्म २६।२
य हि किच्च २१।७
यम्हि सच्चं च १६।६
यांगा वे आयती २ ।३
यो च गाथा- ८।१
यो च पुब्बे १३।६
यो च बुद्धञ्च १४।१२
यो च वन्तकसाव- १।१
यस्स छत्तिसती २४।६
यस्स जालिनी १४।२
यस्स जितं १४।१
यस्स पारं ११।७
यस्स पारं अपारं २६।३
यस्स पुरे च २६।१६
यस्स रागो च २६।२५
यस्सासवा न ७।४
यस्सालया ७।४
यस्सिन्द्रियानि ७।५
यानि'मानि ११।४
याव जीवम्पि ५।५
यावदेव अनत्थाय ५।१३
याव हि वनो २ ।१२
ये च खो ६।११
ये झानपसुता १४।३
ये रागरत्ता २४।१४
येस च सुसमा- २१।४
येसं सन्निचयो ७।३
येसं सम्बोधि ६।१४
यो अप्पदुट्ठस्स ६।१
यो इमं पलिपथं २६।१२
यो पदोपे १७।१२
यो बालो मञ्ञति २१।१४
यो च किलेस २ ।११
यो च पस्सरा २६।६
यो सहस्सं सहस्सेन २५।१८

यो च वस्ससत ८।८
यो च समेति १६।१०
यो चेत सहती २४।३
यो दण्डेन १०।६
यो दुक्खस्स २६।२०
यो' ध कामे २६।३३
यो'ध तण्ह २६।३४
यो'ध दीघ २६।२७
यो'ध पुञ्ञ २६।३०
यो'ध पुञ्ञ १६।१२
यो निब्बानथो २४।११
यो पाणमतिपातेति १८।१२
यो वालो ५।६
यो मुख- २५।४
यो वे उप्पतित १७।२
यो सहस्स- ८।४
यो सासन १२।८३
यो ह वे दहरो २५।२३
रतिया जायते १६।६
रमणीयानि अरञ्ञानि ७।१०
राजतो वा १०।११
सब्बसयोजन २६।१५
सब्बसो नाम- २५।८
सब्बाभिभू २४।२०
सब्बे तसन्ति १०।१,२
सब्बे धम्मा २०।७
सब्बे सङ्खारा अ- २०।५
वहुम्पि चे १।१६
वहु वे सरणा १४।१०
वाचा नुरक्खी २०।६
वाणिजो' व ६।८
वारिजो' व ३।२
वालसगतचारी १५।११
वाहितपापो २६।६
वितक्कपमथितस्स २४।१६
वितक्कूपसमे च २४।१७
वीततण्हो अनादानो २४।१६
वेदनं फरुस १०।१०
स चे नेरेसि १०।६
स चे लमेथ २६।६
सच्च भणे १७।४
सदा जागरमानान १७।६
सद्धो सीलेन २१।१४
सन्तकायो २५।१६
सन्त तस्स ७।७
सब्बत्थ वे ६।८
सब्बदान २४।२१
सब्बपापस्स १८।५
सुखो बुद्धान १८।१६
सुजीव १८।१०
सुञ्ञागार २५।१४
सुदस्स वज- १८।१८
सुदुद्दसं ३।४
सुप्पबुद्ध २१।७—१२

सब्बे सङ्खारा दु-	२०।६	सुभानुपस्सि	१।७
सरितानि	२४।८	सुरामेरयपानं	१८।१३
सलाभं	२५।६	सुसुखं वत	१५।१—४
सवन्ति सब्ब-	२४।७	सेखो पथविं	४।२
सहस्समपि चे गाथा	८।२	सेय्यो अयो-	२२।३
सहस्समपि चे वाचा	८।१	सेलो यथा	६।६
साधु दस्सन—	१५।१	सो करोति	१८।२,४
सारञ्च	१।१२	हत्थसञ्ञतो	२५।३
सिञ्च भिक्खु	२५।१	हनन्ति भोगा	२४।२२
सीलदस्सन—	१६।९	हंसा'दिच्च-	१३।९
सुकरानि	१२।७	हित्वा मानुसकं	२६।३५
सुखकामानि	१ ।३,४	हित्वा रतिं	२६।३६
सुखं याव	२३।१४	हिरीनिसेधो	१ ।१५
सुखा मत्तेय्यता	२३।१३	हिरीमता च	१८।११
		हीनं धम्मं	१३।१

शब्द-सूची

अकिञ्चन—राग, द्वेष और मोह से रहित।

अनुसय (=अनुशय)—कामराग (=भोगतृष्णा), प्रतिघ (=प्रतिहिंसा), दृष्टि (=उल्टी धारणा), विचिकित्सा (=सन्देह), मान(=अभिमान), भवराग,(=ससारमें जन्मनेकी तृष्णा), अविद्या।

अरिय (=)—स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत् (=मुक्त)।

आभस्सर (=आभास्वर)—रूपलोक (=जहाँके प्राणियोंका शरीर प्रकाशमय है) की एक देवजाति।

आयतन—आँख, कान, नाक, जीभ काया (=त्वक्) और मन।

आसव (=आस्रव, मल),—कामास्रव (=भोगसंबंधी मल), भवास्रव (=भिन्न भिन्न लोकोंमें जन्म लेनेका लालचरूपी मल), दृष्ट्यास्रव (=उल्टी धारणा रूपी मल), अविद्यास्रव

उपधि (=उपाधि)—स्कन्ध, काम, क्लेश और कर्म।

खन्ध (=स्कन्ध)—रूप (=परिमाण और तोल रखनेवाला तत्त्व), वेदना, सञ्ञा, सम्कार, (वेदना आदि तीन, रूप और

विज्ञान के सम्पर्क से उत्पन्न विज्ञानकी अवस्थाएँ हैं), विज्ञान (=चेतना, परिमाण और तोल न रखनेवाला तत्त्व)।

थेर—(=स्थविर) वृद्ध भिक्षु।

थेरी—(=स्थविरा) वृद्ध भिक्षुणी।

पातिमोक्ख (=प्रातिमोक्ष)—विनय पिटकमें कहे भिक्षु-भिक्षुणियों के पाराजिक, संघादिसेस आदि नियम। भिक्षुओं के लिए उनकी संख्या इस प्रकार है—

	पाली विनय	(सर्वास्तिवाद)
१ पाराजिक	४	४
२ संघादिसेस	१३	१३
३ अनियत	२	२
४ निस्सग्गिय	३०	३०
५ पाचित्तिय	९२	९०
६ पाटिदेसनीय	४	४
७ सेख	७५	११३
८ अधिकरणसमथ	७	७
	२२७	२६३

मार—इन्द्रसे ऊपर और ब्रह्मासे नीचेका देवता, जिसे वैदिक साहित्य में प्रजापति कहते हैं। राग, द्वेष, मोह आदि मनकी दुष्प्रवृत्तियाँ, जो सत्यके मार्गमें बाधक होती हैं उन्हीं को रूपक के तौर पर मार नाम का एक देवता माना गया है।

संयोजन (=बंधन)—सत्कायदृष्टि (=जीवनको स्कंध-विज्ञानात्मक स्वभावसे न मान कर, आत्मा एक नित्य चेतनकी अलग कल्पना करना) विचिकित्सा (=संदेह), शीलव्रतपरामर्श

(=परम ज्ञानकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न न करके, बाह्य आचार और व्रतों से कृतकृत्यता मानना), कामराग (स्थूल शरीर-धारियों के भोगों की तृष्णा), रूपराग (=प्रकाशमय शरीर धारियों के भोगोंकी तृष्णा), अरूपराग (=रूपरहित देवताओं के भोगोंकी तृष्णा) प्रतिघ (=प्रतिहिंसा), मान (=अभिमान), औद्धत्य (=उद्धतपना), और अविद्या।

ोज्झङ्ग (=सम्बोध्यंग)—स्मृति, धर्मविचय (=धर्मपरीक्षा), वीर्य (=उद्योग), प्रीति, प्रश्रब्धि (=शान्ति), समाधि, उपेक्षा।

ाणेर (=श्रामणेर—भिक्षु होनेका उम्मेदवार बौद्ध साधु, जिसे भिक्षुसंघने अभी उपसम्पन्न (=भिक्षुदीक्षासे दीक्षित) नहीं किया।

ल (=शील)—हिंसा-विरति, मिथ्याभाषण-विरति, चोरीसे विरति, व्यभिचारविरति, मादक द्रव्य सेवन-विरति—यह पाँच शील (=सदाचार) गृहस्थ और भिक्षु दोनों के समान हैं। अपराह्ण-भोजन त्यागी, नृत्य गीत त्याग, माला आदि के शृंगार का त्याग, महार्घ शय्या का त्याग, तथा सोने चाँदी का त्याग, यह पाँच केवल भिक्षुओं के शील हैं।

क्ष्य (=शैक्ष्य)—अर्हत् (=मुक्त) पदको नहीं प्राप्त हुए, आर्य (=स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी) शैक्ष्य कहे जाते हैं, क्योंकि वह अभी शिक्षणीय हैं।

ोतापन्न (=स्रोतआपन्न)—आध्यात्मिक विकास करते जब प्राणी इस प्रकार की मानसिक स्थिति मे पहुँच जाता है, कि, फिर वह नीचे नहीं गिर सकता और निरन्तर आगे ही बढ़ता

जाता है ऐसी अवस्था में पहुँचे पुरुष को स्रोतआपन्न कहते हैं। स्रोत (=स्रोतः=) निर्वाणगामी नदी प्रवाह में जो आपन्न (=पड़ गया) है।*

कामं कामयमानस्य यदा कामः समृध्यते।
अथैनमपरः कामः क्षिप्रमेव प्रबाधते॥

न्यायभाष्य ४।१।५७

* सब पारिभाषिक शब्दों के विस्तार परिचय के लिए बुद्धचर्या की शब्दसूची देखिए।

(विषय-) भोगको वमनकर दिया गया है वही उत्तम पुरुष है।

जेतवन (खदिरवनी) रेवत (थेर)

९८—गामे वा यदि वाऽरञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रामणेय्यकं ॥९॥

(ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये निम्ने वा यदि वा स्थले।
यत्रार्हन्तो विहरन्ति सा भूमि रमणीया ॥९॥)

अनुवाद—गाँवमें या जंगलमें निम्न या (ऊँचे) स्थलमें जहाँ (कहीं) अर्हत् (लोग) विहार करते हैं वही रमणीय भूमि है।

जेतवन आरण्यक भिक्षु

९९—रमणीयानि अरञ्ञानि यत्थ न रमते जनो।
वीतरागा रमिस्सन्ति न ते कामगवेसिनो ॥१०॥

(रमणीयान्यरण्यानि यत्र न रमते जनः।
वीतरागा रंस्यन्ते न ते कामगवेषिणः ॥१०॥)

अनुवाद—(जो) रमणीय वन हैं जहाँ (साधारण) जन रमण नहीं करते, काम (भोगों) के पीछे न भटकनेवाले वीतराग रमण करेंगे।

७—अर्हन्तवग्ग समाप्त

८—सहस्सवग्गो

वेणुवन तम्बदाठिक (चोरघातक)

१००—सहस्समपि चे वाचा अनत्थपदसहिता ।
एकं अत्थपद सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥१॥

(सहस्रमपि चेद् वाचः अनर्थपदसहिताः ।
एकमर्थपदं श्रेयो यच्छ्रुत्वोपशाम्यति ॥१॥)

अनुवाद—व्यर्थ के पदो से युक्त सहस्रों वाक्यों से भी (वह) सार्थक एक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शान्ति होती है ।

जेतवन दारुचीरिय (थेर)

१०१—सहस्समपि चे गाथा अनत्थपदसहिता ।
एकं गाथापद सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥२॥

(सहस्रमपि चेद् गाथा अनर्थपदसंहिता ।
एकं गाथापदं श्रेयो यच्छ्रुत्वोपशाम्यति ॥२॥)

अनुवाद—व्यर्थ के पदों से युक्त हज़ार गाथाओं से भी एक गाथापद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर० ।

जेतवन — कुण्डलकेसी (थेरी)

१०२—यो च गाथा सतं भासे अनत्थपदसंहिता।
एकं धम्मपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥२॥

(यश्च गाथाशतं भाषेतानर्थपदसंहितम्।
एकं धर्मपदं श्रेयो यच्छ्रुत्वोपशाम्यति ॥२॥)

१०३—यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने।
एकं च जेय्यमत्तानं स वे सङ्गामजुत्तमो ॥४॥

(यः सहस्रं सहस्रेण संग्रामे मानुषान् जयेत्।
एकं च जयेदात्मानं स वै संग्रामजिदुत्तमः ॥४॥)

अनुवाद—जो व्यर्थ के पदों से युक्त सौ गाथायें भी भाषे (उनसे)
धर्म का एक पद भी श्रेष्ठ है जिसे सुनकर ॥ संग्राम में
जो हजारों हजार मनुष्यों को जीत ले (उससे एक अपने
का जीतने वाला ही उत्तम संग्रामविजयी है।

जेतवन — अनत्थ-पुच्छक ब्राह्मण

१०४—अत्ता हवे जितं सेय्यो या चायं इतरा पजा।
अत्तदन्तस्स पोसस्स निच्चं सञ्ञतचारिनो ॥५॥
(आत्मा ह वै जितः श्रेयान् या चेयमितरा प्रजा।
दान्तात्मनः पुरुषस्य नित्यं संयतचारिणः ॥५॥)

१०५—नेव देवो न गन्धब्बो न मारो सह ब्रह्मुना।
जितं अपजितं कयिरा तथारूपस्स जन्तुनो ॥६॥

(नैव देवो न गन्धर्वो न मारः सह ब्रह्मणा ।
जितं अपजितं कुर्यात् तथारूपस्य जन्तो ॥६॥)

अनुवाद— इन अन्य प्रजाओंके जीतनेकी अपेक्षा अपनेको जीतना श्रेष्ठ है। अपनेको दमन करनेवाला, नित्य अपनेको संयम करनेवाला जो पुरुष है। इस प्रकारके प्राणीके जीतेको, न देवता, न गन्धर्व, न ब्रह्मा सहित मार, वेजीता कर सक्ते हैं।

वेणुवन　　　　सारिपुत्तके मामा

१०६—मासे मासे सहस्सेन यो यजेथ सत सम ।
एकञ्च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये ।
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुत ॥७॥

(मासे मासे सहस्रेण यो यजेत शतं समान् ।
एकं च भावितात्मानं मुहूर्तमपि पूजयेत् ।
सैव पूजना श्रेयसी यच्चेद् वर्षशतं हुतम् ॥७॥)

अनुवाद—सहस्र(-दक्षिण यज्ञ) से जो महीने महीने सौ वर्ष तक यजन करे, और यदि परिशुद्ध मनवाले एक (पुरुष) को एक मुहूर्त ही पूजे, तो सौ वर्ष के हवन से यह पूजा ही श्रेष्ठ है,

वेणुवन　　　　सारिपुत्त का भाजा

१०७—यो च वस्ससतं जन्तु अग्गिं परिचरे वने ।
एकं च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये ।
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुत ॥८॥

(यश्च वर्षशतं जन्तुरग्निं परिचरेद् वने।
एकं च भावितात्मानं मुहूर्तमपि पूजयेत्।
सैव पूजना श्रेयसी यच्चेद् वर्षशतं हुतम् ॥८॥)

अनुवाद—यदि मानी सौ वर्ष तक वन में अग्निपरिचरण (=अग्नि-होत्र) करे और यदि ।

वेळुवन सारिपुत्त-मित्र ब्राह्मण

१०८—यं किंचि यिट्ठं व हुतं व लोके,
संवच्छरं यजेथ पुञ्ञपेक्खो।
सब्बम्पि तं न चतुभागमेति,
अभिवादना उज्जुगतेसु सेय्यो ॥९॥

(यत् किंचिद् इष्टं च हुतं च लोके,
संवत्सरं यजेत पुण्यापेक्षः।
सर्वमपि तत् न चतुर्भागमेति,
अभिवादना ऋजुगतेषु श्रेयसी ॥९॥)

अनुवाद—पुण्य की इच्छा से जो वर्ष भर नाना प्रकार के यज्ञ और हवन को करे, तो भी वह सरलता को प्राप्त (पुरुष) के लिये की गई अभिवादना के चतुर्थांश के भी बराबर नहीं है।

अरण्यकुटी दीर्घायु कुमार

१०९—अभिवादनसीलिस्स निच्चं वद्धापचायिनो।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं ॥१०॥

(अभिवादनशीलस्य नित्त्यं वृद्धापचायिनः ।
चत्त्वारी धर्मा वर्धन्ते आयुर्वर्णं सुखं वलम् ॥१०॥*)

अनुवाद—जो अभिवादन शील है, जो सदा वृद्धो की सेवा करनेवाला है, उसकी चार बातें (=धर्म) बढ़ती हैं,—आयु, वर्ण सुख और वल ।

जेतवन सकिच्च (=साकृत्य)सामणेर

११०—यो च वस्ससत जीवे दुस्सीलो असमाहितो ।
एकाहं जीवितं सेय्यो सीलवन्तस्स झायिनो ॥११॥

(यश्च वर्षशतं जीवेद् दु शीलोऽसमाहितः ।
एकाह जीवितं श्रेय शीलवतो ध्यायित. ॥११॥)

अनुवाद—दुराचारी और एकाग्रचित्तताविरहित (=असमाहित) के सौ वर्ष के जीने से भी सदाचारी और ध्यानी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है ।

जेतवन कोण्डञ्ञ (थेर)

१११—यो च वस्ससत जीवे दुप्पञ्ञो असमाहितो ।
एकाह जीवितं सेय्यो पञ्ञावन्तस्स झायिनो॥१२॥

(यश्च वर्षशतं जीवेद् दुष्प्रज्ञोऽसमाहिता ।
एकाह जीवितं श्रेय प्रज्ञावतो ध्यायिन ॥१२॥)

* मनुस्मृति में है—"अभिवादनशीलस्य नित्य वृद्धोपसेविन, । चत्त्वारि सम्प्रवर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो वलम् (२।१२१)

अनुवाद—दुष्प्रज्ञ और असमाहित के सौ वर्ष के जीने से भी प्रज्ञावान् और ध्यानी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है।

जेतवन सप्पदास (थेर)

११२—यो च वस्ससतं जीवे कुसीतो हीनवीरियो।
एकाहं जीवितं सेय्यो वीरियमारभतो दळ्हं ॥१३॥

(यश्च वर्षशतं जीवेत् कुसीदो हीनवीर्यः।
एकाहं जीवितं श्रेयो वीर्यमारभतो दृढम् ॥१३॥)

अनुवाद—आलसी और अनुद्योगी के सौ वर्ष के जीवन से दृढ़ उद्योग करनेवाले के जीवन का एक दिन श्रेष्ठ है।

जेतवन पटाचारा (थेरी)

११३—यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं उदयब्बयं।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो उदयब्बयं ॥१४॥

(यश्च वर्षशतं जीवेद् अपश्यन् उदयव्ययम्।
एकाहं जीवितं श्रेयः पश्यत उदयव्ययम् ॥१४॥)

अनुवाद—(संसार में वस्तुओं के) उत्पत्ति और विनाश का न ख्याल करने के सौ वर्ष के जीवन से, उत्पत्ति और विनाश का ख्याल करनेवाले जीवन का एक दिन श्रेष्ठ है।

जेतवन किसागोतमी

११४—यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं अमतं पदं।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो अमतं पदं ॥१५॥

(यश्च वर्षशतं जीवेद अपश्यन् अमृतं पदम् ।
एकाहं जीवितं श्रेयः पश्यतोऽमृतं पदम् ॥१५॥)

अनुवाद—अमृतपद (=दुःखनिर्वाण) को न ख्याल करने के सौ वर्ष के जीवन से, अमृतपदको देखनेवाले जीवनका एक दिन श्रेष्ठ है।

वेतवन　　बहुपुत्तिका (थेरी)

११५–यो च वस्ससत जीवे अपस्स धम्ममुत्तम ।
एकाह जीवित सेय्यो पस्सतो धम्ममुत्तमं ॥१६॥

(यश्च वर्षशत जीवेदुपश्यन् धर्ममुत्तमम् ।
एकाहं जीवित श्रेयः पश्यतो धर्ममुत्तमम् ॥१६॥)

अनुवाद—उत्तम धर्मको न देखने के सौ वर्षके जीवन से, उत्तम धर्म के देखनेवाले के जीवन का एक दिन श्रेष्ठ है।

८—सहस्रवर्ग समाप्त

९—पापवग्गो

जेतवन (चूल) एकसाटक (ब्राह्मण)

११६—अभित्थरेथ कल्याणे पापा चित्तं निवारये ।
दन्धं हि करोतो पुञ्ञं पापस्मिं रमते मनो ॥१॥

(अभित्वरेत कल्याणे पापात् चित्तं निवारयेत् ।
तन्द्रितं हि कुर्वतः पुण्यं पापे रमते मनः ॥१॥)

अनुवाद—पुण्य (कर्मों) में जल्दी करे, पापसे चित्तको निवारण करे पुण्यको धीमी गतिसे करनेपर चित्त पापमें रत होने लगता है ।

जेतवन सेय्यसक (थेर)

११७—पापञ्चे पुरिसो कयिरा न तं कयिरा पुनप्पुनं ।
न तम्हि छन्दं कयिराथ दुक्खो पापस्स उच्चयो ॥२॥

(पापं चेत् पुरुषः कुर्यात् न तत् कुर्यात् पुनः पुनः ।
न तस्मिन् छन्दं कुर्यात्, दुःखः पापस्य उच्चयः ॥२॥)

अनुवाद—यदि पुरुष (कभी) पाप कर डाले तो उसे पुनः पुनः न करे उसमें रत न होवे, (क्योंकि) पापका संचय दुःख (का कारण) होता है ।

जेतवन　　लाजदेवकी कन्या

११८–पुञ्ञञ्चे पुरिसो कयिरा कयिराथेनं पुनप्पुनं ।
तम्हि छन्दं कयिराथ सुखो पुञ्ञस्स उच्चयो ॥३॥

(पुण्यं चेत् पुरुष कुर्यात्, कुर्याद् एतत् पुन पुन. ।
तस्मि छन्दं कुर्यात् सुख. पुण्यस्य उच्चय ॥३॥)

अनुवाद—यदि पुरुप पुण्य करे तो, उसे पुन पुन. करे, उसमें रत होवे, (क्योंकि) पुण्यका सचय सुखकर होता है ।

जेतवन　　अनाथपिण्डिक (सेठ)

११९–पापोपि पस्सति भद्र याव पापं न पच्चति ।
यदा च पच्चति पापं अथ पापानि पस्सति ॥४॥

(पापोऽपि पश्यति भद्रं यावत् पापं न पच्यते ।
यदा च पच्यते पाप अथ पापानि पश्यति ॥४॥)

१२०–भद्रोपि पस्सति पाप याव भद्र न पच्चति ।
यदा च पच्चति भद्र अथ भद्रानि पस्सति ॥५॥

(भद्रोऽपि पश्यति पापं यावद् भद्रं न पच्यते ।
यदा च पच्यते भद्रं अथ भद्राणि पश्यति ॥५॥)

अनुवाद—पापी भी तयतक भला ही देखता है, जवतक कि पापका विपाक नहीं होता, जब पापका विपाक होता है; तब (उसे) पाप दिखाई पड़ने लगता है। भद्र (पुण्य करनेवाला, पुरुप) भी तयतक पापको देखता है 'जवतक कि पुण्यका

विपाक नहीं होने लगता, जब पुण्यका विपाक होने लगता है तो पुण्योंको देखने लगता है।

जेतवन असंयमी (भिक्षु)

१२१—माऽवमञ्ञेथ पापस्स न मन्तं आगमिस्सति ।
उदबिन्दुनिपातेन उदकुम्भोपि पूरति ।
बालो पूरति पापस्स थोक-थोकम्पि आचिनं ॥६॥

(माऽवमन्येत पापं न मां तद् आगमिष्यति ।
उदबिन्दुनिपातेन उदकुम्भोऽपि पूर्यते ।
बालः पूरयति पापं स्तोकं स्तोकमप्याचिन्वन् ॥६॥)

अनुवाद—“वह मेरे पास नहीं आयेगा” ऐसा (सोच) पापकी अवहेलना न करे। पानी की बूंद के गिरने से घड़ा भर जाता है (वैसे ही) मूर्ख थोड़ा थोड़ा संचय करते पापको भर लेता है।

जेतवन बिळालपाद (सेठ)

१२२—माऽवमञ्ञेथ पुञ्ञस्स न मन्तं आगमिस्सति ।
उदबिन्दुनिपातेन उदकुम्भोपि पूरति ।
धीरो पूरति पुञ्ञस्स थोक-थोकम्पि आचिनं ॥७॥

(माऽवमन्येत पुण्यं न मां तद् आगमिष्यति ।
उदबिन्दुनिपातेन उदकुम्भोऽपि पूर्यते ।
धीरः पूरयति पुण्यं स्तोकं स्तोकमप्याचिन्वन् ॥७॥)

अनुवाद—"वह मेरे पास नहीं आयेगा"—ऐसा (सोच) पुण्यकी अवहेलना न करे। पानी की०। धीर थोड़ा थोड़ा संचय करते पुण्य को भर लेता है।

जेतवन महाधन (वणिक्)

१२३–वाणिजो 'व भय मग्गं अप्पसत्थो महद्धनो।
विसं जीवितुकामो' व पापानि परिवज्जये ॥८॥

(वणिगिव भयं मार्गं अल्पसार्थो महाधनः।
विषं जीवितुकाम इव पापानि परिवर्जयेत् ॥८॥

अनुवाद—थोड़े काफिले और महाधनवाला वनजारा जैसे भययुक्त रास्ते को छोड़ देता है, (अथवा) जीने की इच्छावाला पुरुष जैसे विषको (छोड़ देता है), वैसे ही (पुरुष) पापों-को छोड़ दे।

वेणुवन कुक्कुटमित्त

१२४–पाणिम्हि चे वणो नास्स हरेय्य पाणिना विसं।
नाब्बणं विसमन्वेति नत्थि पापं अकुब्बतो ॥९॥

(पाणौ चेद् व्रणो न स्याद् हरेत् पाणिना विषम्।
नाऽव्रणं विषमन्वेति, नास्ति पापं अकुर्वतः ॥९॥)

अनुवाद—यदि हाथ में घाव न हो, तो हाथ से विष को ले ले (क्योंकि) घाव (= व्रण)-रहित (शरीर में) विष नहीं लगता; (इसी प्रकार) न करनेवाले को पाप नहीं लगता।

जेतवन कोक (शुनक शिकारी)

१२५—यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति।
सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स।
तमेव बालं पच्चेति पापं,
सुखुमो रजो पटिवातं'व खित्तो ॥१०॥

(योऽप्रदुष्टाय नराय दुष्यति
शुद्धाय पुरुषायाऽनङ्गणाय।
तमेव बालं प्रत्येति पापं, सूक्ष्मो
रजः प्रतिवातमिव क्षिप्तम् ॥१०॥)

अनुवाद—जो दोषरहित शुद्ध निर्मल पुरुष को दोष लगाता है, उसी मूढ़को (उसका) पाप लौटकर लगता है (जैसे कि) सूक्ष्म धूलि हवा के आने के रुख फेंकने से (फेंकने वाले पर पड़ती है)।

जेतवन (मणिकारकुलूपक) तिस्स (थेर)

१२६—गब्भमेके उप्पज्जन्ति निरयं पापकम्मिनो।
सग्गं सुगतिनो यन्ति, परिनिब्बन्ति अनासवा ॥११॥

(गर्भमेके उत्पद्यन्ते निरयं पापकर्मिणः।
स्वर्गं सुगतयो यान्ति परिनिर्वान्त्यनास्रवाः ॥११॥)

अनुवाद—कोई (पुरुष) गर्भ में उत्पन्न होते हैं (कोई) पापकर्मी नरक में (जाते हैं) कोई) (सुगतिवाले (पुरुष) स्वर्ग को जाते हैं, (और चित्त के) मलों से रहित (पुरुष) निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

जेतवन तीन भिक्षु

१२७—न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे
न पब्बतानं विवरं पविस्स ।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो
यत्थट्ठितो मुञ्चेय्य पापकम्मा ॥१२॥

(नान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये
न पर्वतानां विवरं प्रविश्य ।
न विद्यते स जगति प्रदेशो
यत्रस्थितो मुच्येत पापकर्मणः ॥१२॥)

अनुवाद—न आकाशमें न समुद्रके मध्यमें न पर्वतोंके विवरमें प्रवेश कर—संसारमें कोई स्थान नहीं है, जहाँ रहकर—पाप कर्मोंके (फलसे) (प्राणी) बच सके।

कपिलवस्तु (न्यग्रोधाराम) सुप्पबुद्ध (शाक्य)

१२८—न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे
न पब्बतानं विवरं पविस्स ।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो
यत्थट्ठितं न प्पसहेय्य मच्चू ॥१३॥

(नान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये
न पर्वतानां विवरं प्रविश्य ।
न विद्यते स जगति प्रदेशो
यत्रस्थितं न प्रसहेत मृत्यु ॥१३॥)

अनुवाद—न आकाश में०—जहाँ रहनेवालेको मृत्यु न सतावे।

९—पापवर्ग समाप्त

१०—दण्डवग्गो

जेतवन

षड्वर्गीय (भिक्षु)

१२९—सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो ।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥१॥

(सर्वे त्रस्यन्ति दण्डात् सर्वे बिभ्यति मृत्योः ।
आत्मानं उपमां कृत्वा न हन्यात् न घातयेत् ॥१॥)

अनुवाद—दण्डसे सभी डरते हैं मृत्युसे सभी भय खाते हैं, अपने समान (इन बातोंको) जानकर न मारे न मारनेकी प्रेरणा करे ।

जेतवन

(षड्वर्गीय (भिक्षु)

१३०—सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बेसं जीवितं पियं ।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥२॥

(सर्वे त्रस्यन्ति दण्डात् सर्वेषां जीवितं प्रियम् ।
आत्मानं उपमां कृत्वा न हन्यात् न घातयेत् ॥२॥)

अनुवाद—सभी दण्डसे डरते हैं, सबको जीवन प्रिय है (इसे) अपने समान जानकर न मारे न मारनेकी प्रेरणा करे ।

जेतवन बहुतसे लड़के

१३१–सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो न लभते सुखं ॥३॥

(सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न विहिनस्ति।
आत्मन सुखमन्विष्य प्रेत्य स न लभते सुखम् ॥३॥)

१३२–सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न हिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो लभते सुखं ॥४॥
(सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न हिनस्ति।
आत्मन सुखमन्विष्य प्रेत्य स लभते सुखम् ॥४॥)

अनुवाद—सुख चाहनेवाले प्राणियोंको, अपने सुख की चाहसे जो दण्ड से मारता है, वह मरकर सुख नहीं पाता। सुख चाहनेवाले प्राणियोको, अपने सुख की चाहसे जो दण्डसे नहीं मारता, वह मरकर सुखको प्राप्त होता है।

जेतवन कुण्डधान (थेर)

१३३–मा वोच फरुसं कञ्चि वुत्ता पटिवदेय्यु तं।
दुक्खा हि सारम्भकथा पटिदण्डा फुसेय्यु तं ॥५॥
(मा वोच परुषं किंचिद् उक्ता प्रतिवदेयुस्त्वाम्।
दुःखा हि संरम्भकथा प्रतिदण्डा स्पृशेयुस्त्वाम् ॥५॥)

१३४–स चे नेरेसि अत्तानं कंसो उपहतो यथा।
एस पत्तोसि निब्बाणं सारम्भो ते न विज्जति ॥६॥

(स चेद् नेरयसि आत्मानं कांस्यमुपहतं यथा ।
एष प्राप्तोऽसि निर्वाणं संरम्भस्ते न विद्यते ॥६॥)

अनुवाद—कठोर वचन न बोलो, बोलनेपर (दूसरे भी वैसे ही) तुम्हें बोलेंगे। दुर्वचन दुःखदायक (होते हैं) (बोलनेसे) बदलेमें तुम्हें दण्ड मिलेगा। टूटा काँसा जैसे निःशब्द रहता है, (वैसे) यदि तुम अपनेको (निःशब्द रक्खो) तो तुमने निर्वाणको पालिया, तुम्हारे लिये कलह (=हिंसा) नहीं रही।

श्रावस्ती (पूर्वाराम) विशाखा आदि (उपासिकायें)

१३५—यथा दण्डेन गोपालो गावो पाचेति गोचरं ।
एव जरा च मच्चू च आयु पाचेन्ति पाणिनं ॥७॥

(यथा दण्डेन गोपालो गाः प्राजयति गोचरम् ।
एवं जरा च मृत्युश्चायुः प्राजयतः प्राणिनाम् ॥७॥)

अनुवाद—जैसे ग्वाला लाठीसे गायोंको चरागाहमें ले जाता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियोंकी आयुको ले जाते हैं।

राजगृह (वेणुवन) अजगर (प्रेत)

१३६—अथ पापानि कम्मानि करं बालो न बुज्झति ।
सेहि कम्मेहि दुम्मेधो अग्गिदड्ढो'व तप्पति ॥८॥

(अथ पापानि कर्माणि कुर्वन् बालो न बुध्यते ।
स्वैः कर्मभिर्दुर्मेधा अग्निदग्ध इव तप्यते ॥८॥)

अनुवाद—पाप कर्म करते वक्त मूढ़ (पुरुष उसे) नहीं बूझता पीछे

दुर्बुद्धि अपने ही कर्मोंके कारण आगसे जलेकी भाँति अनुताप करता है।

राजगृह (वेणुवन) महामोग्गलान (थेर)

१३७–यो दण्डेन अदण्डेसु अप्पदुट्ठेसु दुस्सति।
दसन्नमञ्ञतरं ठानं खिप्पमेव निगच्छति ॥९॥

(यो दण्डेनादण्डेष्वप्रदुष्टेषु दुष्यति।
दशानामन्यतमं स्थान क्षिप्रमेव निगच्छति ॥९॥)

१३८–वेदनं फरुसं जानिं सरीरस्स च भेदनं।
गरुकं वापि आबाधं चित्तक्खेपं व पापुणे ॥१०॥

(वेदना परुषां ज्यानिं शरीरस्य च भेदनम्।
गुरुकं वाऽप्याबाधं चित्तक्षेप वा प्राप्नुयात् ॥१०॥)

१३९–राजतो वा उपस्सग्ग अब्भक्खान व दारुणं।
परिक्खय व ञातीनं भोगानं व पभङ्गुणं ॥११॥

(राजतो वोपसर्गमभ्याख्यान वा दारुणम्।
परिक्षयं वा ज्ञातीनां भोगाना वा प्रभजनम् ॥११॥)

१४०–अथवस्स अगारानि अग्गी डहति पावको।
कायस्स भेदा दुप्पञ्ञो निरय सोपपज्जति ॥१२॥

(अथवाऽस्यागाराण्यग्निर्दहति पावक।
कायस्य भेदाद् दुष्प्रज्ञो निरयं स उपपद्यते ॥१२॥)

अनुवाद—जो दण्डरहितों को दण्डसे (पीड़ित करता है), निर्दोषोंको दोष लगाता है, वह शीघ्र ही इन स्थानोंमेंसे एक को प्राप्त

होता है। अथवा वेदना, हानि, अंगभंग या होना भारी बीमारी, (या) चित्तविक्षेप (=पागल)को प्राप्त होता है। या राजासे दण्डको (प्राप्त होता है।) दारुण निन्दा, जाति बन्धुओंका विनाश, भोगोंका क्षय, अथवा उसके घरको अग्नि=पावक जलाता है; काया छोड़नेपर वह दुर्गति नर्कमें उत्पन्न होता है।

जेतवन बहुभण्डिक (भिक्षु)

१४१—न नग्गचरिया न जटा न पङ्का
नानासका थण्डिलसायिका वा।
रजोजल्लं उक्कुटिकप्पधानं
सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकङ्खं ॥१३॥

(न नग्नचर्या न जटा न पंकं
नाऽनशनं स्थण्डिलशायिका वा।
रजोजल्लीयं उत्कुटिकप्रधानं
शोधयन्ति मर्त्यं अवितीर्णकांक्षम् ॥१३॥)

अनुवाद—जिस पुरुषकी आकांक्षायें समाप्त नहीं हो गईं, उस मनुष्यकी शुद्धि, न नंगे रहनेसे, न जटासे, न पंक (लपेटने) से, न फाका (=उपवास) करनेसे, न कड़ी भूमिपर सोनेसे, न धूल लपेटनेसे, न उकड़ूँ बैठनेसे होती है।

जेतवन सन्तति (महामात्य)

१४२—अलङ्कतो चेपि समं चरेय्य
सन्तो दन्तो नियतो ब्रह्मचारी।

सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं
सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खू ॥१४॥

(अलंकृतश्चेदपि शमं चरेत्
शान्तो दान्तो नियतो ब्रह्मचारी।
सर्वेषु भूतेषु निधाय दण्डं
स ब्राह्मणः स श्रमणः स भिक्षुः ॥१४॥)

अनुवाद—अलंकृत रहते भी यदि वह शान्त, दान्त, नियमतत्पर, ब्रह्मचारी सारे प्राणियों के प्रति दंडत्यागी है, तो वही ब्राह्मण है, वही श्रमण (= संन्यासी) वही भिक्षु है।

जेतवन पिलोतिक (थेर)

१४३–हरीनिसेधो पुरिसो कोचि लोकस्मिं विज्जति ।
यो निन्दं अप्पबोधति अस्सो भद्रो कसामिव ॥१५॥

(ह्रीनिषेधः पुरुषः कश्चित् लोके विद्यते।
यो निन्दा न प्रबुध्यति अश्वो भद्रः कशामिव ॥१५॥)

अनुवाद—लोक में कोई पुरुष होते हैं; जो (अपने ही) लज्जा करके निषिद्ध (कर्म) को नहीं करते, जैसे उत्तम घोड़ा कोड़े को नहीं सह सकता, वैसे ही वह निन्दा को नहीं सह सकते।

१४४–अस्सो यथा भद्रो कसानिविट्ठो
आतापिनो संवेगिनो भवाथ ।
सद्धाय सीलेन च वीरियेन च
समाधिना धम्मविनिच्छयेन च ।

सम्पन्नविज्जाचरणा पतिस्सता
पहस्सथा दुक्खमिदं अनप्पकं ॥१६॥

(अश्वो यथा भद्रः कशानिविष्ट
आतापिनः संवेगिनो भवत।
श्रद्धया शीलेन च वीर्येण च
समाधिना धर्मविनिश्चयेन च।
सम्पन्नविद्याचरणाः प्रतिस्मृताः
प्रहास्यथ दुःखमिदं अनल्पकम् ॥१६॥)

अनुवाद—कोड़े पड़े उत्तम घोड़े की भाँति उद्योगी, संवेगयुक्त (वेगवान्) हो, श्रद्धा, आचार, वीर्य, समाधि, और धर्म-निश्चय से युक्त (बन) विद्या और आचरण से समन्वित हो सोचकर इस महान् दुःख (-राशि) का पार कर सकते हो।

१४५—उदकं हि नयन्ति नेत्तिका
उसुकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका
अत्तानं दमयन्ति सुब्बता ॥१७॥

(उदकं हि नयन्ति नेतृकाः, इषुकारा नमयन्ति तेजनम्।
दारु नमयन्ति तक्षका आत्मानं दमयन्ति सुव्रताः ॥१७॥)

अनुवाद—नहरवाले पानी ले जाते हैं, बाण बनाने वाले बाण को सीधा करते हैं, बढ़ई लकड़ी को सीधा करते हैं, सुन्दर व्रतवाले अपने को दमन करते हैं।

१०—दण्डवर्ग समाप्त

११—जरावग्गो

जेतवन — विसाखा की संगिनीं

१४६–को नु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति ।
अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ ॥१॥

(को नु हासः क आनन्दो नित्यं प्रज्वलिते सति ।
अन्धकारेणाऽवनद्धाः प्रदीपं न गवेषयथ ॥१॥)

अनुवाद—जब नित्य ही (आग) जल रही हो, तो क्या हँसी है, क्या आनन्द है ? अंधकार मे घिरे तुम दीपक को (क्यों) नहीं ढूंढते हो ?

राजगृह (वेणुवन) — सिरिमा

१४७–पस्स चित्तकतं बिम्बं अरुकायं समुस्सितं ।
आतुरं बहुसङ्कप्पं यस्स नत्थि धुवं ठिति ॥२॥

(पश्य चित्रीकृतं बिम्बं अरु-कायं समुच्छ्रितम् ।
आतुरं बहुसंकल्पं यस्य नास्ति ध्रुवं स्थितिः ॥२॥)

अनुवाद—देखो चित्रित शरीर को जो व्रणोंसे युक्त, फूला, पीड़ित नाना संकल्पों से युक्त है, जिसकी स्थिति अनित्य है।

जेतवन

उत्तरा (थेरी)

१४८—परिजिण्णमिदं रूपं रोगनिड्ढं पभङ्गुरं।
भिज्जति पूतिसन्देहो मरणन्तं हि जीवितं ॥३॥

(परिजीर्णमिदं रूपं रोगनीडं प्रभंगुरम्।
भिद्यते पूतिसन्देहो मरणान्तं हि जीवितम् ॥३॥)

अनुवाद—यह रूप जीर्ण-शीर्ण, रोग का घर, और भंगुर है, सड़ कर देह भग्न होती है, जीवन मरणान्त जो ठहरा।

जेतवन

अधिमान (भिक्षु)

१४९—यानि'मानि अपत्थानि अलाबूनेव सारदे।
कापोतकानि अट्ठीनि तानि दिस्वान का रति ॥४॥

(यानीमान्यपथ्यान्यलाबूनीव शरदि।
कापोतकान्यस्थीनि तानि दृष्ट्वा का रतिः ॥४॥)

अनुवाद—शरद काल की अपथ्य लौकी की भाँति (फेंक दी गई), या कबूतरों की सी (सफेद हो गई) हड्डियों को देखकर किसको इस (शरीर में) प्रेम होगा?

जेतवन

रूपनन्दा (थेरी)

१५०—अट्ठीनं नगरं कतं मंसलोहितलेपनं।
यत्थ जरा च मच्चु च मानो मक्खो च ओहितो ॥५॥

(अस्थ्नां नगरं कृतं मांसलोहितलेपनम् ।
यत्र जरा च मृत्युश्च मानो म्रक्षश्चावहितः ॥५॥)

अनुवाद—हड्डियों का (एक) नगर बनाया गया है, जो मांस और रक्त से लेपा गया है, जिस में जरा और मृत्यु, अभिमान और डाह छिपे हुये हैं ।

जेतवन मल्लिका देवी

१५१–जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता
अथो सरीरम्पि जरं उपेति ।
सतं च धम्मो न जरं उपेति
सन्तो ह वे सब्भि पवेदयन्ति ॥६॥

(जीर्यन्ति वैराजरथाः सुचित्रा अथ शरीरमपि जरामुपेति ।
सतांच धर्मो न जरामुपेति सन्तो ह वै सद्भ्यः प्रवेदयन्ति ॥६॥)

अनुवाद—सुचित्रित राजरथ भी पुराने हो जाते हैं, और शरीर भी जराको प्राप्त होता है, (किन्तु) सज्जनों का धर्म (=गुण) जरा को नहीं प्राप्त होता, सन्त जन सत्पुरुषों के बारे में ऐसा ही कहते हैं ।

जेतवन (काल) उदायी (थेर)

१५२–अप्पस्सुतायं पुरिसो बलिबद्दो'व जीरति ।
मंसानि तस्स वड्ढन्ति पञ्ञा तस्स न वड्ढति ॥७॥

(अल्पश्रुतोऽयं पुरुषो बलीवर्द इव जीर्यति ।
मांसानि तस्य वर्द्धन्ते प्रज्ञा तस्य न वर्द्धते ॥७॥)

अनुवाद—अल्पश्रुत (=अज्ञानी) पुरुष बैल की भाँति बढ़ता है, उसका मांस ही बढ़ता है, प्रज्ञा नहीं बढ़ती।

१५३—अनेकजातिसंसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं॥८॥

(अनेकजातिसंसारं समधाविषं अनिर्विशमानः।
गृहकारकं गवेषयन्, दुःखा जातिः पुनः पुनः॥८॥)

१५४—गहकारक! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसङ्खितं।
विसङ्खारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा॥९॥

(गृहकारक, दृष्टोऽसि पुनर्गेहं न करिष्यसि।
सर्वास्ते पार्शुका भग्ना गृहकूटं विसंस्कृतम्।
विसंस्कारगतं चित्तं तृष्णानां क्षयमध्यगात्॥९॥)

अनुवाद—बिना रुके अनेक जन्मों तक संसार में दौड़ता रहा। (इस काया रूपी) कोठरी को बनाने वाले (=गृहकारक) को खोजते पुनः पुनः दुःख (-मय) जन्म में पड़ता रहा। हे गृहकारक! (अब) तुझे पहिचान लिया, (अब) फिर तू घर नहीं बना सकेगा। तेरी सभी कड़ियाँ भग्न हो गईं, घर का शिखर भी निर्बल हो गया। संस्कार-रहित चित्त से तृष्णा का क्षय हो गया।

वाराणसी (ऋषिपतन) महाधनी श्रेष्ठी पुत्र

१५५—अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बने धनं।
जिण्णकोञ्चा'व झायन्ति खीणमच्छे'व पल्लले॥१०॥

(अचरित्वा ब्रह्मचर्यं अलब्ध्वा यौवने धनम् ।
जीर्णक्रौंच इव क्षीयन्ते क्षीणमत्स्य इव पल्वले ॥१०॥)

१५६–अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बणे धनं ।
सेन्ति चापातिखीणा'व पुराणानि अनुत्थुनं ॥११॥

(अचरित्वा ब्रह्मचर्यं अलब्ध्वा यौवने धनम् ।
शेरते चापोऽतिक्षीण इव पुराणान्यनुतन्वन्त. ॥११॥)

अनुवाद—ब्रह्मचर्य को विना पालन किये, जवानी में धनको विना कमाये, (पुरुष) मत्स्यहीन जलाशय में वृद्ध क्रौंच पक्षी से जान पड़ते हैं ।

११—जरावर्ग समाप्त

१२—अत्तवग्गो

सुंसुमार (चुनार) गिरि (भेसकलावन) बोधि राजकुमार

१५७—अत्तान चे पिय जञ्ञा रक्खेय्य तं सुरक्खितं।
तिण्णामञ्ञतर याम पटिजग्गेय्य पण्डितो ॥१॥

(आत्मानं चेत् प्रियं जानीयात् रक्षेत सुरक्षितम्।
त्रयाणामन्यतमं यामं प्रतिजागृयात् पण्डितः ॥१॥)

अनुवाद—अपने को यदि प्रिय समझता है, तो अपने को सुरक्षित रखना चाहिए, पंडित (जन) (रात के) तीनों यामों (=पहरों) में से एक में जागरण करें।

जेतवन (शाक्यपुत्र) उपनन्द (थेर)

१५८—अत्ताम एव पठम पतिरूपे निवेसये।
अथञ्ञमनुसासेय्य न किलिस्सेय्य पण्डितो ॥२॥

(आत्मानमेव प्रथमं प्रतिरूपे निवेशयेत्।
अथान्यमनुशिष्यात् न क्लिश्येत् पण्डितः ॥२॥)

अनुवाद—पहिले अपने को ही उचित (काम) में लगावे, (फिर) यदि दूसरे को उपदेश करे, (तो) पंडित क्लेश को न प्राप्त होगा।

जेतवन (अभ्यासी) तिस्स (थेर)

१५९—अत्तानञ्चे तथा कयिरा यथञ्ञमनुसासति।
सुदन्तोवत दम्मेथ अत्ता हि किर दुद्दमो ॥३॥

आत्मानं चेत् तथा कुर्याद् यथाऽन्यमनुशास्ति।
सुदान्तो वत दमयेद्, आत्मा हि किल दुर्दमः ॥३॥)

अनुवाद—अपने को वैसा बनावे, जैसा दूसरे को अनुशासन करना है; (पहिले) अपने को भली प्रकार दमन करे, वस्तुतः अपने को दमन करना (ही) कठिन है।

जेतवन कुमार कस्सपकी माता (थेरी)

१६०—अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया।
अत्तना'व सुदन्तेन नाथ लभति दुल्लभं ॥४॥

(आत्मा[1] हि आत्मनो नाथ. को हि नाथ. परः स्यात्।
आत्मनैव सुदान्तेन नाथं लभते दुर्लभम् ॥४॥)

---

१. भगवद्गीता (अध्याय ६) में
उद्धरेदात्मनात्मान नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो वन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥४॥
वन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥५॥”

अनुवाद—(पुरुष) अपने ही अपना मालिक है, दूसरा कौन मालिक हो सकता है। अपने को भली प्रकार दमन कर लेने पर (वह एक) दुर्लभ मालिक को पाता है।

जेतवन

महाकाल (उपासक)

१६१—अत्तना'व कतं पापं अत्तजं अत्तसम्भवं।
अभिमन्थति दुम्मेधं वजिरं'व स्ममयं मणिं ॥५॥

(आत्मनैव कृतं पापं आत्मजं आत्मसम्भवम्।
अभिमथ्नाति दुर्मेधसं वज्रमिवाश्ममयं मणिम् ॥५॥)

अनुवाद—अपने से जात, अपने से उत्पन्न अपने से किया पाप (करने वाले) दुर्बुद्धि को पाषाणमय वज्रमणि (चोटकी) मणि मन्थन (=पीड़ित) करता है।

वेळुवन

देवदत्त

१६२—यस्स अच्चन्तदुस्सील्यं मालुवा सालमिवोत्थतं।
करोति सो तथत्तानं यथा'नं इच्छती दिसो ॥६॥

(यस्यात्यन्तदौःशील्यं मालुवा शालमिवाततम्।
करोति स तथात्मानं यथैनमिच्छति द्विषः ॥६॥)

अनुवाद—मालुवालता[1] से वेष्टित शाल (वृक्ष) की भाँति जिसका दुराचार फैला हुआ है, वह अपने को वैसा ही कर लेता है, जैसा कि उसके शत्रु चाहते हैं।

---

[1] मालुवा एक लता है जो जिस वृक्ष पर चढ़ती है; वर्षा में पानी के भार से भारी हो उसे तोड़ डालती है।

राजगृह (वेणुवन) संघमें फूटके समय

१६३–सुकरानि असाधूनि अत्तनो अहितानि च।
यं वे हितञ्च साधुञ्च तं वे परमदुक्करं ॥७॥

(सुकराण्यसाधून्यात्मनोऽहितानि च।
यद् वै हितं च साधु च तद् वै परमदुष्करम् ॥७॥

अनुवाद—अनुचित और अपने लिये अहित (कर्मों का करना) सुकर है, (लेकिन) जो हित और उचित है; उसका करना परम दुष्कर है।

जेतवन काल (थेर)

१६४–यो सासन अरहतं अरियानं धम्मजीविनं।
पटिक्कोसति दुम्मेधो दिट्ठिं निस्साय पापिकं।
फलानि कट्ठकस्सेव अत्तहञ्ञाय फुल्लति ॥८॥

(यः शासनमर्हतां आर्याणां धर्मजीविनाम्।
प्रतिक्रुश्यति दुर्मेधा दृष्टिं निःश्रित्य पापिकाम्।
फलानि काष्टकस्यैवात्महत्त्यायै फुल्लति ॥८॥)

अनुवाद—धर्मजीवी, आर्य, अर्हतों के शासन (= धर्म) को, जो दुर्बुद्धि बुरी दृष्टि से निन्दता है, वह बाँस के फल की भाँति अपनी हत्या के लिये फूलता है।

जेतवन (चूल) काल (उपासक)

१६५–अत्तना' व कतं पाप अत्तना संकिलिस्सति।
अत्तना अकत पापं अत्तना'व विसुज्झति ॥
सुद्धि असुद्धिपच्चत्तं नञ्ञो अञ्ञं विसोधये ॥९॥

(आत्मनैव कृतं पापं आत्मना संक्लिश्यति।
आत्मनाऽकृतं पापं आत्मनैव विशुध्यति।
शुद्ध्यशुद्धी प्रत्यात्मं नाऽन्योऽन्यं विशोधयेत् ॥९॥)

अनुवाद—अपने से किया पाप अपने को ही मलिन करता है अपने पाप न करे तो अपने ही शुद्ध रहता है। शुद्धि अशुद्धि प्रत्येक (आदमी) की अलग अलग है। दूसरा (आदमी) दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता।

जेतवन अत्तदत्थ (थेर)

१६६—अत्तदत्थं परत्थेन बहुनाऽपि न हापये।
अत्तदत्थमभिञ्ञाय सदत्थपसुतो सिया ॥१०॥
(आत्मनोऽर्थं परार्थेन बहुनाऽपि न हापयेत्।
आत्मनोऽर्थमभिज्ञाय सदर्थप्रसितः स्यात् ॥१॥)

अनुवाद—पराये के बहुत हित के लिये भी अपने हित की हानि न करे; अपने हित को जान कर उसमें लगे।

१२—आत्मवर्ग समाप्त

१३—लोकवग्गो

जेतवन　　　　　　　　　　　　　　　　　　कोई अल्पवयस्क भिक्षु

१६७—हीनं धम्मं न सेवेय्य, पमादेन न संवसे ।
मिच्छादिट्ठिं न सेवेय्य न सिया लोक-वड्ढनो ॥१॥

(हीनं धर्मं न सेवेत, प्रमादेन न संवसेत् ।
मिथ्यादृष्टिं न सेवेत, न स्यात् लोकवर्द्धनः ॥१॥)

अनुवाद—पाप (=नीच धर्म) को न सेवन करे, न प्रमाद से लिप्त होवे, झूठी धारणा को न सेवन करे, (आदमीको) लोक-(=जन्म मरण) वर्द्धक नहीं बनना चाहिए।

कपिलवस्तु (न्यग्रोधाराम)　　　　　　　　　　　　सुद्धोदन

१६८—उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरे ।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च ॥२॥

(उत्तिष्ठेत् न प्रमाद्येद् धर्मं सुचरितं चरेत् ।
धर्मचारी सुखं शेतेऽस्मिं लोके परत्र च ॥२॥)

१६९—धम्मं चरे सुचरितं न तं दुच्चरितं चरे ।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च ॥३॥